शिक्षा

स्वामी विवेकानन्द

(तृतीय संस्करण)

श्रीरामकृष्ण आश्रम,

नागपुर, मध्यप्रदेश

[मूल्य दस आने

जनवरी, १९५६]

(मद्रास-सरकार के भूतपूर्व शिक्षा-मंत्री श्री टी. एस. अविनाशीलिंगम् को महात्मा गांधी का पत्र)

सेवाग्राम (वर्धा)

प्रिय अविनाशी,

सच पूछो तो, स्वामी विवेकानन्द के लेखो के लिए किसी की प्रस्तावना की आवश्यकता नही है। उनका अक्षुण्ण प्रभाव अपने आप पड़े विना नहीं रहता।

२२-७-'४१

तुम्हारा—
बापू

"भारतीय शिक्षा की किसी समस्या को हल करने के लिए, सबसे पहले सामान्य शिक्षा-कार्य का अनुभव होना आवश्यक है; और इसके लिए शिक्षार्थी की आँखों से संसार की ओर—चाहे वह क्षण भर के लिए ही क्यों न हो—देखते रहना सबसे बड़ा और नितान्त वांछनीय गुण है। शिक्षा-शास्त्र का प्रत्येक सूत्र इसी सत्य की घोषणा करता है। शिक्षार्थी की आकांक्षाओं के विपरीत शिक्षा देना, भलाई की अपेक्षा दुष्परिणामों का निश्चित रूप से आह्वान करना है।"

—स्वामी विवेकानन्द
(भगिनी निवेदिता के शब्दों में)

वक्तव्य

इस पुस्तक में (जिसका यह तृतीय संस्करण है) स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा पर विधायक और स्फूर्तिप्रद विचारों को प्रस्तुत किया गया है। स्वामीजी का व्यक्तित्व ओजपूर्ण और प्रगतिशील था। उन्होंने अपने विचारो में यह प्रतिपादित किया है कि आज भारत को मानवता तथा चरित्र का निर्माण करने-वाली शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। उनके मत से, सभी प्रकार की शिक्षा और संस्कृति का आधार धर्म होना चाहिए। उन्होंने अपने इस सिद्धान्त को अपनी कृतियों और व्याख्यानों मे बराबर पुरस्सर किया है।

मद्रास-सरकार के भूतपूर्व शिक्षा-मन्त्री श्री टी. एस. अविनाशीलिंगम्‌जी ने स्वामीजी के शिक्षा सम्बन्धी विचारो का संकलन किया था। प्रस्तुत पुस्तक उसी का हिन्दी रूपान्तर है।

यह अनुवाद-कार्य हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० द्वारकानाथजी तिवारी, बी. ए, एल-एल. बी., ने किया है। इस बहुमूल्य कार्य के लिए हम उन्हे हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

हमारा विश्वास है, जनता हमारे इस प्रकाशन से लाभान्वित होगी।

नागपुर,
२०-१-१९५६

प्रकाशक

अनुक्रमणिका

स्वामी विवेकानन्द

शिक्षा

‘मनुष्य’ बनानेवाली शिक्षा की आवश्यकता

शिक्षा का महत्त्व।

यूरोप के अनेक नगरों की यात्रा करते समय वहाँ के गरीवो तक के लिए अमन-चैन और शिक्षा की सुविधाओ को देखकर मेरे मन मे अपने देश के गरीवों की दशा का दृश्य खिच जाता था और मेरी आँखो से आँसू झरने लगते थे। ऐसा अन्तर क्यो हुआ? उत्तर मिला—शिक्षा! शिक्षा से आत्म-विश्वास आता है और आत्म-विश्वास से अन्तर्निहित ब्रह्मभाव जाग उठता है।

न्यूयार्क में मै देखता था आयरिश उपनिवेशवासियो को आते हुए—अँगरेजों के पैर से कुचले हुए, कान्तिहीन, नि सम्वल, अति दरिद्र और महामूर्ख—साथ मे एक लाठी और उसके सिरे पर लटकती हुई चिथड़ों की एक छोटीसी गठरी। उनकी चाल और चितवन मे डर-ही-डर समाया रहता था। छः महीनों मे ही भिन्न दृश्य दिखने लगा—अव वह तनकर चल रहा है, उसकी वेश-भूषा वदल गई है, उसकी चाल और चितवन में पहले का वह डर दिखाई नही पडता। ऐसा कैसे हुआ? अपने देश मे वह आयरिश चारो ओर से घृणा से घिरा रहता था—सारी प्रकृति उसे एक-स्वर से कह रही थी, “वच्चू, तुझे और आशा नही है, तू गुलाम ही पैदा हुआ और सदा गुलाम ही वना रहेगा।” आजन्म ऐसा सुनते-सुनते वच्चू को उसी का विश्वास

हो गया और उस पर सम्मोह का रंग चढ़ गया कि वह सचमुच अत्यन्त नीच है। पर ज्योंही उसने अमेरिका में पैर रखे, सभी दिशाओं से उसे यह आवाज जोर से सुनाई देने लगी, "वच्चू, तू भी हमारे ही जैसा मनुष्य है। मनुष्य ने ही सव कुछ किया है; तेरे और हमारे समान मनुष्य सव कुछ कर सकता है। हिम्मत वाँध, उठ !" वच्चू ने सिर उठाया और देखा कि वात तो ठीक ही है,—वस, उसके अन्दर का सोता हुआ ब्रह्मभाव जाग उठा, मानो स्वयं प्रकृति ने ही कह दिया, "उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निवोधत"—उठो, जागो, और ध्येय की प्राप्ति तक रुको मत।

हमारी शिक्षा निपेधात्मक (Negative) है।

आयरिश लोगों को उनके देश में मिलनेवाली शिक्षा के समान हमारे यहाँ के वालकों को भी वड़ी निपेधात्मक या अभावात्मक शिक्षा दी जाती है। उसमें कुछ अच्छी वातें तो हैं, पर उसमें एक ऐसा भयंकर दोप है, जिसके कारण वे सारी अच्छी वातें दव जाती हैं। पहले तो, वह 'मनुष्य' वनानेवाली शिक्षा ही नही है। वह पूर्णतया निपेधात्मक शिक्षा मात्र है। निपेधात्मक शिक्षा अथवा कोई भी प्रशिक्षण, जो निपेध पर आधारित हो, मृत्यु से भी वदतर है।

हमने केवल यही सीखा है कि हम कुछ नही हैं। शायद ही कभी हमें यह वताया जाता हो कि हमारे देश में कभी कोई महामानव पैदा हुए थे। हमें कुछ भी विधायक—कुछ भी भावात्मक (positive) नही सिखाया गया। हमने तो अपने हाथों और पैरों तक का उपयोग करना नही सीखा है। और फ़ल यह है कि पचास वर्ष की ऐसी शिक्षा से एक भी मौलिक

विचारवान पुरुष तैयार नहीं हो सका है। जो भी मौलिकतायुक्त मनीषी सामने आया है, उसने अन्यत्र शिक्षा प्राप्त की है—इस देश में नहीं; या फिर वह यहाँ के पुराने विद्यापीठों में अपनी शुद्धि करने के लिए गया है।

जानकारी (information) ही शिक्षा नहीं है।

शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है, जो तुम्हारे मस्तिष्क में ठूँस दिया गया है और जो आत्मसात् हुए बिना वहाँ आजन्म पड़ा रहकर गड़बड़ मचाया करता है। हमें उन विचारों की अनुभूति कर लेने की आवश्यकता है, जो जीवन-निर्माण, 'मनुष्य'-निर्माण तथा चरित्र-निर्माण में सहायक हों। यदि तुम केवल पाँच ही परखे हुए विचार आत्मसात् कर उनके अनुसार अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर लेते हो, तो तुम एक पूरे ग्रन्थालय को कण्ठस्थ करनेवाले की अपेक्षा अधिक शिक्षित हो। यदि शिक्षा का अर्थ जानकारी ही होता, तब तो पुस्तकालय संसार में सबसे बड़े सन्त हो जाते और विश्वकोष महान् ऋषि बन जाते!

विदेशी भाषा में दूसरे के विचारों को रटकर, अपने मस्तिष्क में उन्हें ठूँसकर और विश्वविद्यालयों की कुछ पदवियाँ प्राप्त करके, तुम अपने को शिक्षित समझते हो! क्या यही शिक्षा है? तुम्हारी शिक्षा का उद्देश्य क्या है? या तो मुंशीगिरी मिलाना, या वकील हो जाना, या अधिक-से-अधिक डिप्टी मैजिस्ट्रेट बन जाना, जो मुंशीगिरी का ही दूसरा रूप है—बस यही न? इससे तुमको या तुम्हारे देश को क्या लाभ होगा? आँखें खोलकर देखो, जो भरतखण्ड अन्न का अक्षय भण्डार रहा है, आज वहीं उसी अन्न के लिए कैसी करुण पुकार उठ रही

है ! क्या तुम्हारी शिक्षा इस अभाव की पूर्ति करेगी ? वह शिक्षा जो जनसमुदाय को जीवन-संग्राम के उपयुक्त नही वनाती, जो उनकी चारित्र्य-शक्ति का विकास नही करती, जो उनमें भूत-दया का भाव और सिंह का साहस पैदा नहीं करती, क्या उसे भी हम 'शिक्षा' का नाम दे सकते है ?

हमें क्या चाहिए।

हमें तो ऐसी शिक्षा चाहिए, जिससे चरित्र वने, मानसिक वीर्य वढ़े, वुद्धि का विकास हो और जिससे मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सके। हमे आवश्यकता इस वात की है कि हम विदेगी अधिकार से स्वतंत्र रहकर अपने निजी ज्ञानभाण्डार की विभिन्न शाखाओ का और उसके साथ ही अँगरेजी भापा और पाश्चात्य विज्ञान का अध्ययन करें। हमे यान्त्रिक और ऐसी सभी शिक्षाओं की आवश्यकता है, जिनसे उद्योग-धन्धो की वृद्धि और विकास हो, जिससे मनुष्य नौकरी के लिए मारा-मारा फिरने के वदले अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त कमाई कर सके और आपत्काल के लिए संचय भी कर सके।

'मनुष्य' निर्माणकारी शिक्षा।

सभी प्रकार की शिक्षा और अभ्यास का उद्देश्य 'मनुष्य'-निर्माण ही हो। सारे प्रशिक्षणों का अन्तिम ध्येय मनुष्य का विकास करना ही है। जिस अभ्यास से मनुष्य की इच्छाशक्ति का प्रवाह और प्रकाश संयमित होकर फलदायी वन सके, उसी का नाम है शिक्षा। आज हमारे देश को जिस चीज की आवश्यकता है, वह है लोहे की मांस-पेशियाँ और फौलाद के स्नायु—दुर्दमनीय प्रचण्ड इच्छाशक्ति, जो सृष्टि के गुप्त तथ्यों और रहस्यों को भेद सके और जिस उपाय से भी हो अपने उद्देश्य की पूर्ति करने

में समर्थ हो, फिर चाहे उसके लिए समुद्र-तल में ही क्यों न जाना पड़े—साक्षात् मृत्यु का ही सामना क्यो न करना पड़े! हम 'मनुष्य' बनानेवाला धर्म ही चाहते हैं। हम 'मनुष्य' बनानेवाले सिद्धान्त ही चाहते हैं। हम सर्वत्र, सभी क्षेत्रों में, 'मनुष्य' बनानेवाली शिक्षा ही चाहते हैं।

शिक्षा का तत्त्व

मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। ज्ञान मनुष्य में स्वभाव-सिद्ध है; कोई भी ज्ञान वाहर से नही आता; सव अन्दर ही है। हम जो कहते है कि मनुष्य 'जानता' है, यथार्थ में, मानसशास्त्र-संगत भाषा में, हमें कहना चाहिए कि वह 'आविष्कार करता' है, 'अनावृत' या 'प्रकट' करता है। मनुष्य जो कुछ 'सीखता' है, वह वास्तव में 'आविष्कार करना' ही है। 'आविष्कार' का अर्थ है—मनुष्य का अपनी अनन्त ज्ञानस्वरूप आत्मा के ऊपर से आवरण को हटा लेना। हम कहते है कि न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का आविष्कार किया। तो क्या वह आविष्कार कही एक कोने में न्यूटन की राह देखते वैठा था ? नहीं, वह उसके मन में ही था। जव समय आया, तो उसने उसे जान लिया या ढूँढ़ निकाला। संसार को जो कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह सव मन से ही निकला है। विश्व का असीम ज्ञानभाण्डार स्वयं तुम्हारे मन में है। वाहरी संसार तो एक सुझाव, एक प्रेरक मात्र है, जो तुम्हे अपने ही मन का अध्ययन करने के लिए प्रेरित करता है। सेव के गिरने से न्यूटन को कुछ सूझ पड़ा और उसने अपने मन का अध्ययन किया। उसने अपने मन में विचार की पुरानी कड़ियों को फिर से व्यवस्थित किया और उनमें एक नई कड़ी को देख पाया, जिसे हम गुरुत्वाकर्षण का नियम कहते हैं। वह न तो सेव में था और न पृथ्वी के केन्द्रस्थ किसी वस्तु मे।

ज्ञान मनुष्य में स्वभाव-सिद्ध है।

अतः समस्त ज्ञान, चाहे वह लौकिक हो अथवा आध्यात्मिक,

ज्ञान की प्रक्रिया।

मनुष्य के मन में है। वहुधा वह प्रकाशित न होकर ढका रहता है। और जव आवरण धीरे-धीरे हटता जाता है, तो हम कहते हैं कि 'हम सीख रहे हैं'। ज्यो-ज्यो इस आविष्करण की क्रिया वढ़ती जाती है, त्यों-त्यों हमारे ज्ञान की वृद्धि होती जाती है। जिस मनुष्य पर से यह आवरण उठता जा रहा है, वह अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक ज्ञानी है, और जिस पर यह आवरण तह-पर-तह पड़ा हुआ है, वह अज्ञानी है। जिस पर से यह आवरण पूरा हट जाता है, वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हो जाता है। चकमक पत्थर के टुकडे में अग्नि के समान, ज्ञान मन में निहित है और सुझाव या उद्दीपक-कारण ही वह घर्षण है, जो उस ज्ञानाग्नि को प्रकाशित कर देता है। सभी ज्ञान और सभी शक्तियाँ भीतर हैं। हम जिन्हे शक्तियाँ, प्रकृति के रहस्य या वल कहते है, वे सव भीतर ही हैं। मनुष्य की आत्मा से ही सारा ज्ञान आता है। जो ज्ञान सनातन काल से मनुष्य के भीतर निहित है, उसी को वह वाहर प्रकट करता है, अपने भीतर देख पाता है।

वालक स्वयं अपने को सिखाता हैं।

वास्तव में कभी किसी व्यक्ति ने किसी दूसरे को नही सिखाया। हममें से प्रत्येक को अपने-आपको सिखाना होगा। वाहर के गुरु तो केवल सुझाव या प्रेरणा देनेवाले कारण मात्र है, जो हमारे अन्त स्थ गुरु को सव विपयों का मर्म समझने के लिए उद्बोधित कर देते है। तव फिर वाते हमारे ही अनुभव और विचार की शक्ति के द्वारा स्पष्टतर हो जायँगी और हम अपनी आत्मा में उनकी अनुभूति करने लगेंगे। वह समूचा वशाल वटवृक्ष, जो आज कई एकड़ जमीन घेरे हुए है, उस

छोटे से बीज में था, जो शायद सरसों-दाने के अष्टमांश से बड़ा नहीं था। वह सारी शक्तिराशि उस बीज में निबद्ध थी। हम जानते हैं कि विशाल बुद्धि एक छोटे से जीवाणुकोष (protoplasmic cell) में सिमटी हुई रहती है। यह भले ही एक पहेली-सा प्रतीत हो, पर है यह सत्य। हममें से हर कोई एक जीवाणुकोष से उत्पन्न हुआ है, और हमारी सारी शक्तियाँ उसी में सिकुड़ी हुई थीं। तुम यह नही कह सकते कि वे खाद्यान्न से उत्पन्न हुई हैं, क्योंकि यदि तुम अन्न का एक पर्वत भी खड़ा कर दो, तो क्या उसमें से कोई शक्ति प्रकट होगी? शक्ति वही थी, भले ही वह अव्यक्त या प्रसुप्त रही हो, पर थी वहीं। उसी तरह मनुष्य की आत्मा में अनन्त शक्ति निहित है, चाहे वह यह जानता हो या न जानता हो। इसको जानना, इसका बोध होना ही इसका प्रकट होना है।

अन्तःस्थ दिव्य ज्योति बहुतेरे मनुष्यों में अवरुद्ध रहती है। वह लोहे की सन्दूक में बन्द दीपक के समान है—थोड़ासा भी प्रकाश बाहर नहीं आ सकता। पवित्रता और निःस्वार्थता के द्वारा हम उस अवरोधक माध्यम की सघनता को धीरे-धीरे झीना करते जाते है और अन्त में वह काँच के समान पारदर्शक बन जाता है। श्रीरामकृष्ण लोहे से काँच मे परिवर्तित पेटी के समान थे, जिसमें से भीतर का प्रकाश ज्यों-का-त्यों दिख सकता है।

उसके स्वाभाविक विकास में सहायता करो।

तुम किसी बालक को शिक्षा देने में उसी प्रकार असमर्थ हो, जैसे कि किसी पौधे को बढ़ाने में। पौधा अपनी प्रकृति का विकास आप ही कर लेता है। बालक भी अपने आपको शिक्षित करता है। पर हाँ, तुम उसे अपने ही ढंग से आगे बढ़ने

में सहायता दे सकते हो। तुम जो कुछ कर सकते हो, वह निपेध-आत्मक ही होगा, विधि-आत्मक नहीं। तुम केवल वाधाओं को हटा दे सकते हो, और वस, ज्ञान अपने स्वाभाविक रूप से प्रकट हो जायगा। जमीन को कुछ पोली वना दो, ताकि उसमें से उगना आसान हो जाय। उसके चारों ओर घेरा वना दो और देखते रहो कि कोई उसे नष्ट न कर दे। उस वीज से उगते हुए पौधे की शारीरिक वनावट के लिए तुम मिट्टी, पानी और समुचित वायु का प्रवन्ध कर सकते हो, और वस यहीं तुम्हारा कार्य समाप्त हो जाता है। वह अपनी प्रकृति के अनुसार जो भी आवश्यक हो ले लेगा। वह अपनी प्रकृति से ही सवको पचाकर वढ़ेगा। वस ऐसा ही वालक की शिक्षा के वारे में है। वालक स्वयं अपने आपको शिक्षित करता है। शिक्षक ऐसा समझकर कि वह शिक्षा दे रहा है, सव कार्य विगाड़ डालता है। समस्त ज्ञान मनुष्य के अन्तर में अवस्थित है, उसे केवल जागृति— केवल प्रवोधन की आवश्यकता है, और वस इतना ही शिक्षक का कार्य है। हमें वालकों के लिए केवल इतना ही करना है कि वे अपने हाथ, पैर, कान और आँखों के उचित उपयोग के लिए अपनी वुद्धि का प्रयोग करना सीखें।

स्वतंत्र अवसर।

किसी ने एक को सलाह दी कि गधे को पीटने से वह घोड़ा वन सकता है। गधे के मालिक ने उसे घोड़ा वनाने की इच्छा से इतना पीटा कि वह वेचारा गधा ही मर गया! तो इस प्रकार लड़कों को ठोंक-पीटकर शिक्षित वनाने की जो प्रणाली है, उसका अन्त कर देना चाहिए। माता-पिता के अनुचित दवाव के कारण हमारे वालकों को विकास का स्वतंत्र अवसर प्राप्त नहीं होता। हर एक में

ऐसी असंख्य प्रवृत्तियाँ रहा करती है, जिनके विकास के लिए समुचित क्षेत्र की आवश्यकता होती है। सुधार के लिए वलात् उद्योग करने का परिणाम सदैव उलटा ही होता है। यदि तुम किसी को सिंह बनने न दोगे, तो वह सियार ही बनेगा।

विधायक विचार।

हमे विधायक विचार सामने रखने चाहिए। निषेधात्मक विचार लोगों को दुर्बल बना देते है। क्या तुमने यह नहीं देखा कि जहाँ माता-पिता पढ़ने-लिखने के लिए अपने बालकों के सदा पीछे लगे रहते है और कहा करते है कि तुम कभी कुछ सीख नहीं सकते, गवे वने रहोगे—वहाँ बालक यथार्थ मे वैसे ही बन जाते है? यदि तुम उनसे सहानुभूति-भरी बातें करो और उन्हें उत्साह दो, तो समय पाकर उनकी उन्नति होना निश्चित है। यदि तुम उनके सामने विधायक विचार रखो, तो उनमे मनुष्यत्व आयगा और वे अपने पैरों पर खड़ा होना सीखेंगे। भाषा और साहित्य, काव्य और कला, हर एक विषय मे हमे मनुष्यों को उनके विचार और कार्य की भूलें नही बतानी चाहिए, वरन् उन्हें वह मार्ग दिखा देना चाहिए, जिससे वे इन सब बातों को और भी सुचारु रूप से कर सकें। विद्यार्थी की आवश्यकता के अनुसार शिक्षा में परिवर्तन होना चाहिए। अतीत जीवनों ने हमारी प्रवृत्तियों को गढ़ा है, इसलिए विद्यार्थी को उसकी प्रवृत्तियों के अनुसार मार्ग दिखाना चाहिए। जो जहाँ पर है, उसे वही से आगे बढ़ाओ। हमने देखा है कि जिनको हम निकम्मा समझते थे, उनको भी श्रीरामकृष्ण देव ने किस प्रकार उत्साहित किया और उनके जीवन का प्रवाह बिलकुल बदल दिया! उन्होंने कभी भी किसी मनुष्य की विशेष प्रवृत्तियों को नष्ट नहीं किया। उन्होंने अत्यन्त

पतित मनुष्यों के प्रति भी आशा और उत्साहपूर्ण वचन कहे और उन्हे ऊपर उठा दिया।

स्वाधीनता—विकास की पहली शर्त।

स्वाधीनता ही विकास की पहली शर्त है। यदि कोई यह कहने का दुस्साहस करे कि 'मै इस स्त्री या इस बालक के उद्धार का उपाय करूँगा', तो यह गलत है, हजार बार गलत है। दूर हट जाओ! वे अपनी समस्याओ को स्वयं हल कर लेगे। तुम सर्वज्ञता का दम्भ भरनेवाले होते कौन हो? तुममे ऐसे दु साहस का विचार कैसे आया कि ईश्वर पर भी तुम्हारा अधिकार है? क्या तुम ो जानते कि प्रत्येक आत्मा ईश्वर का ही स्वरूप है? हर एक भगवत्-स्वरूप समझो। तुम सेवा मात्र कर सकते हो। प्रभु सन्तानो की सेवा करो—जब कभी तुम्हे अवसर मिले। यदि प्रभु की इच्छा से तुम उनकी किसी सन्तान की सेवा कर सको, तो सचमुच तुम धन्य हो। तुम धन्य हो कि वह सौभाग्य तुम्हे प्राप्त हुआ और दूसरे उससे वचित रहे। उस कार्य को पूजा की ही भावना से करो।

शिक्षा का एकमेव मार्ग

एकाग्रता ।

ज्ञान की प्राप्ति के लिए केवल एक ही मार्ग है और वह है 'एकाग्रता'। 'मन की एकाग्रता' ही शिक्षा का सम्पूर्ण सार है। ज्ञानार्जन के लिए निम्नतम श्रेणी के मनुष्य से लेकर उच्चतम योगी तक को इसी एक मार्ग का अवलम्बन करना पड़ता है। रासायनिक अपनी प्रयोग-शाला में अपने मन की सारी शक्तियों को एकाग्र करके एक ही केन्द्र में स्थिर करता है और तत्त्वों (elements) पर प्रक्षेप करता है—उससे तत्त्व विश्लेषित हो जाते हैं और उसे ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। ज्योतिषी अपने मन की शक्तियों को एकाग्र करके एक ही केन्द्र पर लाता है और दूरदर्शी यन्त्र के द्वारा उन्हे अपने विषयों पर लगाता है; बस त्योंही तारागण और ग्रहसमुदाय सामने चले आते हैं और अपना रहस्य उसके पास खोलकर रख देते हैं। चाहे विद्वान् अध्यापक हो, चाहे मेधावी छात्र हो, चाहे अन्य कोई भी हो, यदि वह किसी विषय को जानने की चेष्टा कर रहा है, तो उसे उपर्युक्त प्रथा से ही काम लेना पड़ेगा।

उसकी शक्ति ।

एकाग्रता की शक्ति जितनी अधिक होगी, ज्ञान की प्राप्ति भी उतनी ही अधिक होगी। नीच चर्मकार भी यदि अधिक एकाग्रचित्त होगा, तो जूता अधिक अच्छा साफ करेगा। रसोइया एकाग्रचित्त होने से अधिक अच्छा भोजन पकायगा। पैसा कमाने में अथवा ईश्वर की आराधना करने मे या और भी कोई कार्य करने में जितनी अधिक एकाग्रता होगी, वह कार्य उतना ही अधिक अच्छा सम्पन्न होगा। यही एक

खटखटाहट है, यही एक आघात है, जो प्रकृति के द्वारों को खुला कर देता है और ज्ञानरूपी प्रकाश को वाहर फैलाता है।

मात्रा का भेद।

नव्वे प्रतिशत विचारशक्ति को साधारण मनुष्य व्यर्थ खो देता है और इसी कारण वह सदा वड़ी-वड़ी भूले किया करता है। अभ्यस्त मन कभी भूल नही करता। मनुष्यों और पशुओं में मुख्य भेद केवल चित्त की एकाग्रता-शक्ति का तारतम्य ही है। पशु मे एकाग्रता की शक्ति वहुत कम होती है। जिन्होंने पशुओ को सिखाने का काम किया है, वे इस कठिनाई का अनुभव करते है कि पशु को जो कुछ सिखाया जाता है, उसे वह सदा भूल जाया करता है। पशु अपना मन अधिक समय तक किसी वात पर स्थिर नही रख सकता। वस यही पर मनुष्यों और पशुओ में अन्तर है। मनुष्य-मनुष्य का भेद भी उनकी एकाग्रता-शक्ति के इस तारतम्य से होता है। सवसे निम्न मनुष्य की उच्चतम पुरुष के साथ तुलना करो। उन दोनों में भेद केवल एकाग्रता की मात्रा मे है।

फल।

किसी कार्य की सफलता इसी पर निर्भर करती है। कला, संगीत आदि में अत्युच्च प्रवीणता इसी एकाग्रता का फल है। जव मन को एकाग्र करके उसे अपने ही ऊपर लगाया जाता है, तव हमारे भीतर के सभी हमारे नौकर वन जाते है, मालिक नही रह जाते। यूनानियों ने अपनी एकाग्रता का प्रयोग वाह्य संसार पर किया था और इसके फलस्वरूप उन्हे कला, साहित्य आदि मे पूर्णता प्राप्त हुई। हिन्दुओं ने अन्तर्जगत् पर, आत्मा के अदृष्ट प्रदेश पर अपने चित्त को एकाग्र किया और इस तरह योगशास्त्र की उन्नति की। विश्व अपना रहस्य खोल देने को तैयार है, केवल हमे यही जानना है

कि इसके लिए किस तरह दरवाजा खटखटाया जाय—आवश्यक आघात कैसे किया जाय। इस खटखटाने या आघात करने की शक्ति और दृढ़ता एकाग्रता से प्राप्त होती है।

ज्ञान की एकमात्र कुंजी।

एकाग्रता की शक्ति ही ज्ञान के खजाने की एकमात्र कुंजी है। अपनी वर्तमान शारीरिक अवस्था में हम बड़े ही विक्षिप्त-चित्त हो रहे हैं। हमारा मन इस समय सैकड़ों ओर दौड़-दौड़कर अपनी शक्ति नष्ट कर रहा है। जब कभी मैं व्यर्थ की सब चिन्ताओं को छोड़कर ज्ञान-लाभ के उद्देश्य से मन को किसी विषय पर स्थिर करने का प्रयत्न करता हूँ, त्योंही मस्तिष्क में सहस्रों अवांछित भावनाएँ दौड़ आती हैं, हजारों चिन्ताएँ मन में एक साथ आकर उसको चंचल कर देती हैं। किस प्रकार से इन्हें रोककर मन को वश मे लाया जाय, यही राजयोग का एकमात्र आलोच्य विषय है। ध्यान का अभ्यास करने से मानसिक एकाग्रता प्राप्त होती है।

मैं तो मन की एकाग्रता को ही शिक्षा का यथार्थ सार समझता हूँ—ज्ञातव्य विषयों के संग्रह को नहीं। यदि मुझे एक बार फिर से अपनी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिले, तो मैं विषयों का अध्ययन नहीं करूँगा। मैं तो एकाग्रता की और मन को विषय से अलग कर लेने की शक्ति को बढ़ाऊँगा, और तब साधन या यंत्र की पूर्णता प्राप्त हो जाने पर इच्छानुसार विषयों का संग्रह करूँगा।

एकाग्रता के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता।

बारह वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करनेवाले को शक्ति प्राप्त होती है। पूर्ण ब्रह्मचर्य से प्रबल बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न होती है। वासनाओं को वश मे कर लेने से उत्कृष्ट फल प्राप्त होते हैं। काम-शक्ति को आध्यात्मिक

शक्ति में परिणत कर लो। यह शक्ति जितनी ही प्रवल होगी, उससे उतना ही अधिक कार्य हो सकेगा। जल का शक्तिशाली प्रवाह ही खदान खोदने के जल-यंत्र को चला सकता है। इस ब्रह्मचर्य के अभाव के कारण हमारे देश में प्रत्येक वस्तु नष्टप्राय हो रही है। कड़े ब्रह्मचर्य के पालन से कोई भी विद्या अल्पकाल में ही अवगत की जा सकती है, एक ही बार सुनी या जानी हुई बात को याद रखने की अचूक स्मृति-शक्ति आ जाती है। ब्रह्मचारी के मस्तिष्क में प्रवल कार्यशक्ति और अमोघ इच्छा-शक्ति रहती है। पावित्र्य के विना आध्यात्मिक शक्ति नहीं आ सकती। ब्रह्मचर्य द्वारा मानवजाति पर अद्‌भुत प्रभुता प्राप्त होती है। आध्यात्मिक नेतागण अखण्ड ब्रह्मचारी रहे हैं और इसी से उन्हें शक्ति प्राप्त हुई थी।

प्रत्येक बालक को पूर्ण ब्रह्मचर्य का अभ्यास करने की शिक्षा देनी चाहिए। तभी उसमें श्रद्धा और विश्वास की उत्पत्ति होगी। सदैव और सभी अवस्थाओं में मन, वचन और कर्म से पवित्र रहना ही ब्रह्मचर्य कहलाता है। अपवित्र कल्पना उतनी ही बुरी है, जितना अपवित्र कार्य। ब्रह्मचारी को मन, वाणी और कर्म से शुद्ध रहना चाहिए।

श्रद्धा ही सारी उन्नति का मूल है।

एक बार फिर से अपने में सच्ची श्रद्धा की भावना लानी होगी, आत्मविश्वास को पुनः जगाना होगा, तभी हम उन सारी समस्याओं को धीरे-धीरे सुलझा सकेंगे, जो आज हमारे सामने हैं। हमें आज इसी श्रद्धा की आवश्यकता है। मनुष्य-मनुष्य में इसी श्रद्धा का तो अन्तर है, अन्य किसी वस्तु का नहीं। वह श्रद्धा ही है, जो एक मनुष्य को बड़ा और दूसरे को छोटा बनाती है। मेरे

गुरुदेव कहा करते थे, 'जो अपने को दुर्बल समझता है, वह दुर्बल ही हो जाता है,' और यह बिलकुल सच है। तुममें यह श्रद्धा आनी ही चाहिए। पाश्चात्य जातियों में तुम जो कुछ भौतिक शक्ति का विकास देखते हो, वह इसी श्रद्धा का परिणाम है; कारण, उन्हें अपने बाहु-बल पर विश्वास है; और यदि तुम आत्म-बल पर विश्वास रखो, तो परिणाम और भी कितना अधिक न होगा!

मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही बन जाता है।

यह एक बात अच्छी तरह समझ लो कि जो मनुष्य दिन-रात सोचता रहता है कि मैं कुछ भी नहीं हूँ, उससे हम कोई आशा नहीं रख सकते। यदि कोई दिन-रात यही सोचता रहे कि मैं दीन-हीन हूँ, नाचीज हूँ, तो वह सचमुच नाचीज बन जायगा। अगर तुम सोचो कि मैं कुछ हूँ, मुझमें शक्ति है, तो सचमुच तुममें शक्ति आ जायगी। यह एक महान् सत्य है, जिसका तुम्हें स्मरण रहना चाहिए। हम उस सर्वशक्तिमान प्रभु की सन्तान है—उस अनन्त ब्रह्माग्नि की चिनगारियाँ है! हम नाचीज कैसे हो सकते है? हम सब कुछ है, सब कुछ करने को तैयार हैं और सब कुछ कर सकते है। हमारे पूर्वजों में ऐसा ही दृढ़ आत्मविश्वास था। इसी आत्मविश्वासरूपी प्रेरणा-शक्ति ने उन्हें सभ्यता की ऊँची-से-ऊँची सीढ़ी पर चढ़ाया था। और अब यदि अवनति हुई है, यदि कोई दोष आ गया है, तो तुम देखोगे, इस अवनति का आरम्भ उसी दिन से हो गया, जब से हम अपने इस आत्मविश्वास को खो बैठे।

इस श्रद्धा या आत्मविश्वास के सिद्धान्त का प्रचार करना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। मैं इस बात को दुबारा कहता हूँ

कि यह आत्मविश्वास मानवता का एक सबसे शक्तिशाली अंग है। पहले अपने आपमे विश्वास रखो। यह जान लो कि भले ही एक व्यक्ति छोटासा बुलबुला हो और दूसरा पर्वत के समान ऊँची तरंग, पर बुलबुले और तरंग दोनो के ही पीछे वही अनन्त सागर है। वही अनन्त सागर मेरा और तुम्हारा दोनों का आधार है। जीवन, शक्ति और आध्यात्मिकता का वह अनन्त महासागर जैसा मेरा है, वैसा ही तुम्हारा भी। अतः, हे भाइयो! तुम अपनी सन्तानों को उनके जन्म-काल से ही इस महान्, जीवनप्रद, उच्च और उदात्त तत्त्व की शिक्षा देना शुरू कर दो।

शिक्षक और शिष्य

मेरे विचार के अनुसार शिक्षा का अर्थ है—'गुरुगृह-वास'।

शिक्षक के व्यक्तिगत जीवन का महत्त्व।

शिक्षक अर्थात् गुरु के व्यक्तिगत जीवन के विना कोई शिक्षा नही हो सकती। शिष्य को वाल्यावस्था से ही ऐसे व्यक्ति (गुरु) के साथ रहना चाहिए, जिनका चरित्र जाज्वल्यमान अग्नि के समान हो, जिससे उच्चतम शिक्षा का सजीव आदर्श शिष्य के सामने रहे। हमारे देश मे ज्ञान का दान सदा त्यागी पुरुषों द्वारा ही होता रहा है। ज्ञानदान का भार पुनः त्यागियों के कन्धो पर पड़ना चाहिए।

शिक्षा की प्राचीन प्रथा।

भारतवर्ष की पुरानी शिक्षाप्रणाली वर्तमान प्रणाली से विलकुल भिन्न थी। विद्यार्थियों को शुल्क नहीं देना पड़ता था। ऐसी धारणा थी कि ज्ञान इतना पवित्र है कि उसे किसी मनुष्य को वेचना नही चाहिए। ज्ञान का दान मुक्तहस्त होकर, विना कोई दाम लिए, करना चाहिए। शिक्षकगण विद्यार्थियों को उनसे शुल्क लिए विना ही अपने पास रखते थे। इतना ही नही, वहुतेरे गुरु तो अपने शिष्यों को अन्न और वस्त्र भी देते थे। इन शिक्षकों के निर्वाह के लिए धनी लोग उन्हे दान दिया करते थे, और उसी से वे अपने शिष्यों का पालन-पोषण करते थे। पुराने जमाने मे शिष्य गुरु के आश्रम को 'समित्पाणि' होकर (हाथ में समिधा लेकर) जाता था और गुरु उसकी योग्यता का निश्चय करने के पश्चात्, उसके कटिप्रदेश मे तीन लड़वाली मुज-मेखला वाँधकर उसे वेदों की शिक्षा देते थे। यह मेखला तन, मन

और वचन को वश मे रखने की उसकी प्रतिज्ञा की चिह्न-स्वरूप थी।

शिष्य और गुरु दोनो के लिए कुछ आवश्यक नियम है।

शिष्यो के गुण।

शिष्य के लिए आवश्यकता है शुद्धता, ज्ञान की सच्ची पिपासा और लगन के साथ परिश्रम की। विचार, वाणी और कार्य की पवित्रता नितान्त आवश्यक है। ज्ञान-पिपासा के सम्बन्ध मे पुराना नियम यह है कि हम जो कुछ चाहते है, वही पाते है। जिस वस्तु की हम अन्त.करण से चाह नही करते, वह हमें प्राप्त नही होती। हमे तो अपनी पाशविक प्रकृति के साथ निरन्तर जूझे रहना होगा, सतत युद्ध करना होगा और उसे अपने वश मे लाने के लिए अविराम प्रयत्न करना होगा। कब तक? जब तक हमारे हृदय मे उच्चतर आदर्श के लिए सच्ची व्याकुलता उत्पन्न न हो जाय, जब तक विजय-श्री हमारे हाथ न लग जाय। जो शिष्य इस प्रकार अध्यवसाय के साथ लग जाता है, उसकी अन्त में सफलता-प्राप्ति निश्चित है।

गुरु के सम्बन्ध मे यह जान लेना आवश्यक है कि उन्हे

शिक्षक के तीन विशिष्ट गुण।

शास्त्रों का मर्म ज्ञात हो। वैसे तो सारा संसार ही बाइबिल, वेद और कुरान पढ़ता है; पर वे तो केवल शब्दराशि है, धर्म की सूखी ठठरी मात्र है। जो गुरु शब्दाडम्बर के चक्कर में पड़ जाते हैं, जिनका मन शब्दों की शक्ति मे बह जाता है, वे भीतर का मर्म खो बैठते है। जो शास्त्रों के वास्तविक मर्मज्ञ है, वे ही असल में सच्चे धार्मिक गुरु है।

गुरु के लिए दूसरी आवश्यक बात है—निष्पापता। बहुधा प्रश्न पूछा जाता है, "हम गुरु के चरित्र और व्यक्तित्व की ओर

ध्यान ही क्यों दे ?" यह ठीक नहीं है। अपने तईं आध्यात्मिक सत्य की उपलब्धि करने और दूसरों में उसका संचार करने का एकमात्र उपाय है—हृदय और मन की पवित्रता। गुरु को पूर्ण रूप से शुद्धचित्त होना चाहिए, तभी उनके शब्दों का मूल्य होगा। वास्तव में गुरु का काम ही यह है कि वे शिष्य में आध्यात्मिक शक्ति का संचार कर दें, न कि शिष्य की बुद्धिवृत्ति अथवा अन्य किसी शक्ति को उत्तेजित मात्र करें। यह स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है कि गुरु से शिष्य में सचमुच एक शक्ति आ रही है। अतः गुरु का शुद्धचित्त होना आवश्यक है।

तीसरी आवश्यक बात है उद्देश्य के सम्बन्ध में। गुरु को धन, नाम या यश सम्बन्धी स्वार्थ-सिद्धि के हेतु धर्म-शिक्षा नहीं देनी चाहिए। उनके कार्य तो सारी मानव-जाति के प्रति विशुद्ध प्रेम से ही प्रेरित हों। आध्यात्मिक शक्ति का संचार केवल शुद्ध प्रेम के माध्यम से ही हो सकता है। किसी प्रकार का स्वार्थपूर्ण भाव, जैसे कि लाभ अथवा यश की इच्छा, तत्काल ही इस प्रेम-रूपी माध्यम को नष्ट कर देगा।

गुरु पर विश्वास।

गुरु के साथ हमारा सम्बन्ध ठीक वैसा ही है, जैसा पूर्वज के साथ उसके वंशज का। गुरु के प्रति विश्वास, नम्रता, विनय और श्रद्धा के बिना हममें धर्म-भाव पनप ही नहीं सकता। जिन देशों में इस प्रकार के गुरु-शिष्य-सम्बन्ध की उपेक्षा हुई है, वहाँ धर्मगुरु एक वक्ता मात्र रह गया है—गुरु को मतलब रहता है अपनी 'दक्षिणा' से और शिष्य को मतलब रहता है गुरु के शब्दों से, जिन्हें वह अपने मस्तिष्क में ठूँस लेना चाहता है। यह हो गया कि बस दोनों अपना-अपना रास्ता नापते हैं ! पर यह भी सत्य है कि किसी

के प्रति अन्धी भक्ति से मनुष्य की प्रवृत्ति दुर्बलता और व्यक्तित्व की उपासना की ओर झुकने लगती है। अपने गुरु की पूजा ईश्वर-दृष्टि से करो, पर उनकी आज्ञा का पालन आँखे मूँदकर न करो। प्रेम तो उन पर पूर्ण रूप से करो, परन्तु स्वयं भी स्वतन्त्र रूप से विचार करो।

शिष्य के प्रति सहानुभूति।

गुरु को शिष्य की प्रवृत्ति मे अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए। सच्ची सहानुभूति के विना हम अच्छी शिक्षा कभी नही दे सकते। 'न बुद्धिभेदं जनयेत्'—किसी की श्रद्धा को डाँवाडोल करने का प्रयत्न मत करो। यदि हो सके, तो उसे कुछ उच्चतर भाव दो; पर देखना, उसका भाव कही नष्ट न कर देना। सच्चा गुरु तो वह है, जो क्षण भर मे अपने आपको मानो सहस्र पुरुषो के रूप में परिवर्तित कर सकता है। सच्चा गुरु वह है, जो अपने को तुरन्त शिष्य की सतह तक नीचे ला सकता है और अपनी आत्मा को शिष्य की आत्मा मे प्रविष्ट कर सकता है तथा शिष्य के मन द्वारा देख और समझ सकता है। ऐसा ही गुरु यथार्थ में शिक्षा दे सकता है, दूसरा नही।

चरित्र-गठन के लिए शिक्षा

विचार-शक्ति का महत्त्व।

मनुष्य का चरित्र उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों की समष्टि है, उसके मन के समस्त झुकावों का योग है। सुख और दुःख ज्यों-ज्यों उसकी आत्मा पर से होकर गुजरते हैं, वे उस पर अपनी-अपनी छाप या संस्कार छोड़ जाते हैं, और इन सब विभिन्न छापों की समष्टि का फल ही मनुष्य का चरित्र कहलाता है। हम वही हैं, जो हमारे विचारों ने हमें बनाया है। प्रत्येक विचार हमारे शरीर पर, लोहे के टुकड़े पर हथौड़े की हलकी चोट के समान है और उसके द्वारा हम जो बनना चाहते हैं बनते जाते हैं। वाणी तो गौण है। विचार सजीव होते हैं; उनकी दौड़ बहुत दूर तक हुआ करती है। अतः तुम अपने विचारों के सम्बन्ध में सावधान रहो।

सुख और दुःख का स्थान।

भलाई और बुराई दोनों का चरित्र-गठन में समान भाग रहता है, और कभी-कभी तो सुख की अपेक्षा दुःख ही बड़ा शिक्षक होता है। यदि हम संसार के महापुरुषों के चरित्र का अध्ययन करें, तो मैं कह सकता हूँ कि अधिकांश दशाओं में हम यही देखेंगे कि सुख की अपेक्षा दुःख ने तथा सम्पत्ति की अपेक्षा दारिद्र्य ने ही उन्हें अधिक शिक्षा दी है एवं स्तुति की अपेक्षा आघातों ने ही उनकी अन्तःस्थ ज्ञानाग्नि को अधिक प्रस्फुरित किया है। विलास और ऐश्वर्य की गोद में पलते हुए, गुलाबों की शय्या पर सोते हुए और कभी भी आँसू बहाए बिना कौन महान् हुआ है? जब हृदय में वेदना की टीस होती है, जब दुःख का तूफान चारों दिशाओं में घहराता है, जब मालूम होता है कि प्रकाश अब और न

दिखेगा, जब आशा और साहस नष्ट-प्राय हो जाता है, तभी इस भयंकर आध्यात्मिक झंझावात के बीच अन्तर्निहित ब्रह्मज्योति प्रकाशित होती है।

कर्म का परिणाम।

मन को यदि झील की उपमा दी जाय, तो उसमे उठनेवाली प्रत्येक लहर, प्रत्येक तरंग जब दब जाती है, तो वास्तव मे वह बिलकुल नष्ट नही हो जाती, वरन् चित्त में एक प्रकार का चिह्न छोड़ जाती है तथा ऐसी सम्भावना का निर्माण कर जाती है, जिससे वह लहर दुबारा फिर से उठ सके। हमारा प्रत्येक कार्य, हमारा प्रत्येक अंग-संचालन, हमारा प्रत्येक विचार हमारे चित्त पर इसी प्रकार का एक संस्कार छोड़ जाता है, और यद्यपि ये संस्कार ऊपरी दृष्टि से स्पष्ट न हों, तथापि ये अज्ञात रूप से अन्दर-ही-अन्दर कार्य करने में विशेष प्रबल होते हैं। हम प्रति मुहूर्त जो कुछ हैं, वह इन संस्कारों के समुदाय द्वारा ही नियमित होता है। प्रत्येक मनुष्य का चरित्र इन संस्कारो की समष्टि द्वारा ही नियमित होता है। यदि शुभ संस्कारों का प्राबल्य रहे, तो मनुष्य का चरित्र अच्छा होता है, और यदि अशुभ संस्कारों का, तो बुरा। यदि कोई मनुष्य निरन्तर बुरे शब्द सुनता रहे, बुरे विचार सोचता रहे, बुरे कर्म करता रहे, तो उसका मन भी बुरे सस्कारों से पूर्ण हो जायगा और बिना उसके जाने ही वे संस्कार उसके समस्त विचारो तथा कार्यो पर अपना प्रभाव डाल देगे। असल में ये बुरे सस्कार निरन्तर अपना कार्य करते रहते हैं। ये संस्कार उसमे दुष्कर्म करने की प्रबल प्रवृत्ति उत्पन्न कर देगे। वह तो इन सस्कारो के हाथ एक यन्त्र-सा हो जायगा।

इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य अच्छे विचार सोचे और

चरित्र-गठन । अच्छे कार्य करे, तो उसके इन संस्कारों का प्रभाव भी अच्छा ही होगा तथा उसकी इच्छा न होते हुए भी वे उसे सत्कार्य करने के लिए विवश करेंगे। जव मनुष्य इतने सत्कार्य एवं सत्-चिन्तन कर चुकता है कि उसकी इच्छा न होते हुए भी उसमें सत्कार्य करने की एक अनिवार्य प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, तव फिर यदि वह दुष्कर्म करना भी चाहे, तो इन सव संस्कारो का समष्टि-रूप उसका मन उसे वैसा करने से फौरन् रोक देगा। तव वह अपने सत्संस्कारों के हाथ एक कठपुतली-जैसा हो जायगा। जव ऐसी स्थिति हो जाती है, तभी उस मनुष्य का चरित्र गठित या प्रतिष्ठित कहलाता है। यदि तुम सचमुच किसी मनुष्य के चरित्र को जाँचना चाहते हो, तो उसके वड़े कार्यों पर से उसकी जाँच मत करो। मनुष्य के अत्यन्त साधारण कार्यो की जाँच करो, और असल में वे ही ऐसी वातें हैं, जिनसे तुम्हे एक महान् पुरुप के वास्तविक चरित्र का पता लग सकता है। कुछ विगेप, वड़े अवसर तो छोटे-से-छोटे मनुष्य को भी किसी-न-किसी प्रकार का वड़प्पन दे देते है। परन्तु वास्तव में वड़ा तो वही है, जिसका चरित्र सदैव और सव अवस्थाओं में महान् रहता है।

मन में इस प्रकार के वहुत से संस्कार पड़ने पर वे इकट्ठे होकर आदत या अभ्यास के रूप मे परिणत हो जाते है। कहा जाता है, 'आदत द्वितीय स्वभाव है।' पर यही नहीं, वह 'प्रथम' स्वभाव भी है और मनुप्य का सारा स्वभाव है। हमारा अभी जो स्वभाव है, वह पूर्व अभ्यास का फल है। यह जान सकने से कि सव कुछ आदत का ही फल है, मन को सान्त्वना मिलती है; क्योंकि यदि

अच्छी और वुरी आदतें ।

हमारा वर्तमान स्वभाव केवल अभ्यासवश हुआ हो, तो हम चाहे तो किसी भी समय उस अभ्यास को नष्ट भी कर सकते है। बुरी आदत का एकमात्र प्रतिकार है—उसकी विपरीत आदत। सभी खराव आदतें अच्छी आदतो द्वारा वशीभूत की जा सकती हैं। सतत अच्छे कार्य करते रहो और सदा पवित्र विचार मन मे सोचा करो। नीच संस्कारो को दवाने का यही एकमात्र उपाय है। ऐसा कभी न कहो कि अमुक व्यक्ति गया-बीता है, उसके सुधरने की आशा नही की जा सकती। क्यों? इसलिए कि वह व्यक्ति केवल एक विशिष्ट प्रकार के चरित्र का—कुछ अभ्यासों की समष्टि का द्योतक मात्र है, और ये अभ्यास नए एवं अच्छे अभ्यास से दूर किए जा सकते है। चरित्र वस पुन.-पुनः अभ्यास की समष्टि मात्र है और इस प्रकार का पुन.-पुन. अभ्यास ही चरित्र का पुनर्गठन कर सकता है।

हम स्वयं अपने भाग्य का निर्माण करते हैं।

सभी वुराइयो का कारण हमी में है। किसी दैवी (अति-प्राकृत) व्यक्ति को दोप मत दो। न तो निराश या विषण्ण होओ और न यही सोचो कि हम ऐसी अवस्था मे पड़े हैं, जहाँ से हम कभी छुटकारा नही पा सकते, जब तक कि कोई आकर हमें अपने हाथ का सहारा नही देता। हम रेशम के कीड़े के समान है। हम अपने आपमे से ही सूत निकालकर कोष का निर्माण करते है और कुछ समय के वाद उसी के भीतर कैद हो जाते है। कर्म का यह जाल हमी ने अपने चारो ओर वुन रखा है। अपने अज्ञान के कारण हमे यह प्रतीत होता है कि हम बद्ध हैं, और इसलिए सहायता के लिए हम रोते-चिल्लाते है। पर सहायता कही वाहर से तो नही आती, वह तो हमारे भीतर से

ही आती है। चाहो तो विश्व के समस्त देवताओं को पुकारते रहो, मैं भी बरसों पुकारता रहा और अन्त में देखा कि मुझे सहायता मिल रही है। पर वह सहायता मिली भीतर से। भ्रान्ति-वश इतने दिन तक जो अनेक प्रकार के काम करता रहा, उस भ्रान्ति को मुझे दूर करना पड़ा। अपने चारों ओर मैंने जो जाल फेंक रखा था, उसे मुझे काट डालना पड़ा। मैंने अपने जीवन में अनेक गलतियाँ की हैं। पर यह स्मरण रहे कि उन गलतियों के बिना मैं आज जो हूँ, वह नही रहता। मेरा तात्पर्य यह नही कि तुम घर जाओ और जान-बूझकर गलतियाँ करो; मेरे कहने का उस प्रकार उलटा अर्थ मत लगाओ। पर जो गलतियाँ तुम कर चुके हो, उनके कारण हताश मत होओ।

गलतियों का कारण है अज्ञान।

हम क्यों गलतियाँ करते है?—इसलिए कि हम दुर्बल है। हम दुर्बल क्यों हैं?—इसलिए कि हम अज्ञानी है। हमें अज्ञानी कौन बनाता है? हम स्वयं ही। हम अपनी आँखों को अपने हाथों से ढक लेते है और 'अँधेरा है' 'अँधेरा है' कहकर रोते है। हाथ हटा लो, तो प्रकाश-ही-प्रकाश है। मनुष्य की आत्मा स्वभाव से ही स्वयंप्रकाश है। अत: हमारे लिए प्रकाश का अस्तित्व सदा ही है। आधुनिक वैज्ञानिक लोग क्या कहते हैं, क्या तुम नही सुनते? क्रमविकास का कारण क्या है?—इच्छा। जीवधारी कुछ करना चाहता है, परन्तु परिस्थिति को अनुकूल नही पाता; इसलिए नए शरीर का निर्माण कर लेता है। यह कौन निर्माण करता है? स्वयं वही जीवधारी, उसकी इच्छाशक्ति। अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करते रहो और वही तुम्हे ऊपर उठाती जायगी। इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है। तुम पूछ सकते हो, यदि

वह सचमुच सर्वशक्तिमान है, तो फिर मैं सब कुछ क्यों नही कर सकता ? पर तुम तो केवल अपनी क्षुद्र आत्मा के सम्बन्ध में सोच रहे हो। अपनी निम्नतम जीवाणु (amoeba) की अवस्था से लेकर मनुष्य-शरीर तक इस सारी जीवन-शृंखला पर नजर डालो। यह सब किसने बनाया ? स्वयं तुम्हारी इच्छा-शक्ति ने। क्या तुम उसकी सर्वशक्तिमत्ता को अस्वीकार कर सकते हो ? जिसने तुम्हें इतने ऊँचे तक उठाया, वह तुम्हे और भी ऊँचा ले जा सकती है। आवश्यकता है चारित्र्य की, इच्छा-शक्ति को सबल बनाने की।

अपने चरित्र का निर्माण करो।

यदि तुम अपनी गलतियो के नाम पर, घर जाकर सिर पर हाथ धरके जन्म-भर रोते रहो, तो उससे तुम्हारा उद्धार नही होने का, बल्कि उससे तुम और भी दुर्बल हो जाओगे। यदि यह कमरा हजारों वर्षो से अन्धकारपूर्ण हो और तुम उसमे जाकर रोने-धोने लगो, 'हाय ! बडा अँधेरा है ! हाय ! बड़ा अँधेरा है !' तो क्या उससे अँधेरा चला जायगा ? दियासलाई जलाओ, और क्षण भर में ही अन्धकार दूर हो जायगा। सारा जीवन यदि तुम अफसोस करते रहो—'अरे ! मैंने अनेक दुष्कर्म किए, बहुतसी गलतियाँ की', तो उससे क्या लाभ ? हममे बहुत से दोष है, यह किसी को बतलाना नही पड़ता। ज्ञानाग्नि प्रज्वलित करो, एक क्षण मे सब अशुभ चला जायगा। अपने चरित्र का निर्माण करो और अपने प्रकृत स्वरूप को—उसी ज्योतिर्मय, उज्ज्वल, नित्यशुद्ध स्वरूप को प्रकाशित करो, तथा प्रत्येक व्यक्ति मे उसी आत्मा को जगाओ।

धार्मिक शिक्षा

धर्म तो शिक्षा का मेरुदण्ड ही है। हाँ, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यहाँ धर्म से मेरा मतलब मेरा, तुम्हारा या अन्य किसी का धर्ममत नहीं है। यथार्थ सनातन तत्त्वों को जनता के समक्ष रखना है। पहले तो हमें महापुरुषों की पूजा चलानी होगी। जो लोग इन सब सनातन सत्यों को प्रत्यक्ष कर गए हैं, उनको जनता के समक्ष आदर्श या इष्ट के रूप में रखना होगा, जैसे श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण, महावीर (श्रीहनुमान), श्रीरामकृष्ण आदि। वर्तमान समय के लिए वृन्दावनविहारी मुरलीधारी कृष्ण को अलग कर दो और गीतारूपी सिंहनाद करनेवाले श्रीकृष्ण की पूजा का जोरों से दूर-दूर तक प्रचार करो, सर्वशक्तिस्वरूपिणी जगन्माता की घर-घर में नित्य-पूजा चला दो। हमें अब अधिक आवश्यकता है ऐसे वीर के आदर्श की, जिसकी नसों में सिर से पैर तक प्रबल रजोगुण फड़कता हो, जो सत्य को जानने के लिए मृत्यु से भी सामना करते न हिचके, जिसकी ढाल वैराग्य हो और तलवार, बुद्धि। हमें अभी आवश्यकता है युद्ध-क्षेत्र के साहसी योद्धा के हृदय की।

सन्तों की पूजा।

अब तुम्हें महावीर श्रीहनुमान के चरित्र को अपना आदर्श बनाना होगा। देखो, वे कैसे रामचन्द्र की आज्ञा मात्र से विशाल सागर को लाँघ गए! उन्हें जीवन या मृत्यु से कोई नाता न था। वे सम्पूर्ण रूप से इन्द्रिय-जित् थे और उनकी प्रतिभा अद्भुत थी। अब तुम्हें अपना जीवन दास्य-भक्ति के इस महान् आदर्श पर खड़ा करना होगा। उसके माध्यम से, क्रमशः अन्य सारे आदर्श जीवन में प्रकाशित

सेवा का आदर्श।

होंगे। गुरु के श्रीचरणों मे सर्वतोभावेन आत्मसमर्पण और अटूट ब्रह्मचर्य—बस यही सफलता का रहस्य है। हनुमान एक ओर जिस प्रकार सेवादर्श के प्रतीक है, उसी प्रकार दूसरी ओर सिंह-विक्रम के भी प्रतीक है—सारा ससार उनके सम्मुख श्रद्धा और भय से सिर झुकाता है। राम की भलाई के लिए अपने जीवन तक का बलिदान कर देने मे उन्हे तनिक भी हिचक नही है। राम की सेवा के सिवाय अन्य सभी विषयो के प्रति वे अत्यन्त उदासीन है। एकमात्र श्रीरामचन्द्र की आज्ञा-पालन ही उनके जीवन का व्रत है। बस हमे ऐसी ही पूरे हृदय से भक्ति और निष्ठा चाहिए।

गम्भीर रणभेरी बजने दो।

वर्तमान समय मे गोपियो के साथ कृष्ण-लीला की उपासना उपयोगी नही है। वशीनाद इत्यादि से देश का पुनरुद्धार नही होगा। खोल और करताल बजा-बजाकर तथा कीर्तन की मस्ती मे नाच-नाचकर सारी जाति अवनत हो गई है। जिस अत्युच्च साधना के लिए सबसे पहले परम पवित्रता की आवश्यकता है, उसी की नकल करते-करते लोग घोर तमोगुण मे डूब गए है। क्या हमारे देश मे नगाड़े नही बनते ? क्या भारतवर्ष मे बिगुल और भेरियाँ नही मिलती ? हमारे बालको को इन बाजों की गम्भीर ध्वनि सुनाओ। बचपन से स्त्रैण संगीत की ध्वनि सुनते-सुनते यह देश प्राय: स्त्रियों के देश मे परिणत हो गया है। अब तो डमरू और सिंगी बजाना है—नगाड़े को पीटना है, ताकि युद्ध की गम्भीर तुमुल ध्वनि उठे, और 'महावीर-महावीर' तथा 'हर हर बम बम' के गम्भीर नाद से सारी दिशाओ को गुंजाना है। मनुष्य के केवल कोमल भावो को जगानेवाले संगीत को कुछ समय के

लिए अब बन्द कर देना है। लोगों को ध्रुपद राग सुनने के आदी बनाना है।

उदात्त वैदिक मन्त्रों की मेघगर्जना के द्वारा देश में पुनः प्राण का सचार करना है। सब बातों में वीर पुरुष के कठोर भाव को जागृत करना है। ऐसे आदर्श के अनुसार यदि अपने चरित्र का संगठन कर सको, तो सहस्रों गुण आप-से-आप आ जायँगे। पर सावधानी इस बात की रहे कि आदर्श से इंच-भर भी डिगने न पाओ। हिम्मत कभी मत हारो। खान-पान, वेश-भूषा, सोने-बैठने, गाने-बजाने, खेलने-कूदने, सुख-दुःख सभी अवस्थाओं मे सदैव उच्चतम नैतिक साहस का परिचय दो। अपने मन को कभी भी कमजोरी के वश न होने दो। 'महावीर' का स्मरण करो, 'कालीमाई' की याद करो; देखोगे, सारी दुर्बलता और कायरता तुरन्त भाग जायगी।

नया धर्म।

प्राचीन धर्मों ने कहा, "वह नास्तिक है, जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता।" नया धर्म कहता है, "नास्तिक वह है, जो स्वयं में विश्वास नहीं करता।" पर यह विश्वास केवल इस क्षुद्र 'मैं' को लेकर नही है। इस विश्वास का अर्थ है—सबके प्रति विश्वास, क्योंकि तुम सर्व-स्वरूप हो। आत्मप्रीति का अर्थ है सब प्राणियों पर प्रीति—समस्त पशु-पक्षियों पर प्रीति, सब वस्तुओ पर प्रीति; क्योंकि तुम सब एक हो। यह महान् विश्वास ही संसार का सुधार करेगा। अपने आपमे विश्वास रखने का आदर्श ही हमारा सबसे बड़ा सहायक है। यदि इस आत्मविश्वास का और भी विस्तृत रूप से प्रचार होता और वह कार्य-रूप मे परिणत हो जाता, तो मुझे निश्चय है कि हमारी बुराइयो तथा दु:खों का बहुत बड़ा भाग आज तक

मिट गया होता। मानव-जाति के सम्पूर्ण इतिहास में महान् पुरुषों और स्त्रियों के जीवन मे यदि सबसे बड़ी प्रवर्तक शक्ति कोई थी, तो वह आत्मविश्वास की ही शक्ति थी। जन्म से ही यह विश्वास रहने के कारण कि वे महान् होने के लिए ही पैदा हुए हैं, वे महान् बने।

अनन्त शक्ति ही धर्म है। बल पुण्य है और दुर्बलता पाप।

बल।

सभी पापों और सभी बुराइयो के लिए एक ही शब्द पर्याप्त है और वह है—'दुर्बलता'। दुर्बलता ही सारे दुष्कर्मो की प्रेरक-शक्ति है। दुर्बलता ही समस्त स्वार्थीपन की जड़ है। दुर्बलता के कारण ही मनुष्य दूसरे को चोट पहुँचाता है। सब कोई जान जायँ कि वे कौन हैं, दिन और रात वे यही जपें—'सोऽहम्' 'सोऽहम्'। माता के दूध के साथ वे इस 'सोऽहम्'-रूपी शक्ति की भावना को भी पी ले। पहले इसका श्रवण करना होगा, तत्पश्चात् वे इस पर मनन करे, और तब उस मनन या विचार से ऐसे कार्यों की उत्पत्ति होगी, जैसे कार्य संसार ने कभी देखे ही नही।

जो सत्य हो, उसकी साहस के साथ घोषणा करो। सभी

सत्य।

सत्य सनातन है। सत्य ही आत्मामात्र का स्वभाव है। और यह रही सत्य की कसौटी—जो कुछ तुम्हे शरीर से, बुद्धि से या आत्मा से कमजोर बनाए, उसे विष की भाँति त्याग दो; उसमे जीवन-शक्ति नहीं है, वह कभी सत्य नही हो सकता। सत्य तो बलप्रद है, पवित्रतास्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है। सत्य तो वह है, जो शक्ति दे, जो हृदय के अन्धकार को दूर कर दे, जो हृदय में स्फूर्ति भर दे। अब फिर से अपने उपनिषदों का—उस बलप्रद, आलोकप्रद, दिव्य दर्शनशास्त्र

का—आश्रय ग्रहण करो। सत्य जितना महान् होता है, उतना ही सहज बोधगम्य होता है—स्वयं अपने अस्तित्व के समान सहज। जैसे अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए और किसी की आवश्यकता नहीं होती, बस वैसा ही। उपनिषदों के सत्य तुम्हारे सामने हैं। उन्हें अपनाओ, उनकी उपलब्धि कर उन्हें कार्य-रूप में परिणत करो—बस देखोगे, भारत का उद्धार निश्चित है।

शारीरिक शक्ति।

शारीरिक दुर्बलता ही हमारे दुःखों के कम-से-कम एक-तृतीयांश का कारण है। हम आलसी हैं; हम मिलकर काम नहीं कर सकते। हम कई बातों को तोते की नाईं दुहराते हैं, पर उनके अनुसार काम नहीं करते। केवल मुख से कह देना और आचरण में न लाना—यह हमारा स्वभाव ही बन गया है। कारण क्या है?—शारीरिक दुर्बलता। इस प्रकार के दुर्बल मस्तिष्क से कोई काम नहीं हो सकता। हमें उसे सबल बनाना होगा। सर्वप्रथम हमारे नवयुवकों को बलवान बनना चाहिए। धर्म पीछे आ जायगा। मेरे नवयुवक मित्रो! बलवान बनो। तुमको मेरी यही सलाह है। गीता के अभ्यास की अपेक्षा फुटबाल के द्वारा तुम स्वर्ग के अधिक निकट पहुँच जाओगे। तुम्हारी कलाई और भुजाएँ अधिक मज़बूत होने पर तुम गीता को अधिक अच्छी तरह समझोगे। तुम्हारे रक्त में शक्ति की मात्रा बढ़ने पर तुम श्रीकृष्ण की महान् प्रतिभा और अपार शक्ति को अधिक अच्छी तरह समझने लगोगे। तुम जब अपने पैरों पर दृढ़ता के साथ खड़े होगे और तुमको जब प्रतीत होगा कि हम भी मनुष्य हैं, तब तुम उपनिषदों को और भी अच्छी तरह समझोगे और आत्मा की महिमा को जान सकोगे।

निर्भयता।

उपनिषदों का प्रत्येक पृष्ठ मुझे 'बल' की महिमा बता रहा है। संसार मे यही एक साहित्य है, जिसमें तुम्हे 'अभीः' (निर्भय) शब्द का उपयोग बारम्बार दिखाई देगा। संसार के और किसी भी धर्म-शास्त्र मे यह विशेषण ईश्वर या मनुष्य को नही लगाया गया है। मेरे मन मे अत्यन्त अतीत काल के उस पाश्चात्य देशीय सम्राट सिकन्दर का चित्र उदय होता है—मानो मै देख रहा हूँ, वह महाप्रतापशाली सम्राट सिन्धु नदी के किनारे खड़ा होकर हमारे ही एक अरण्यवासी, शिलाखण्ड पर बैठे हुए, वृद्ध, नग्न, संन्यासी के साथ बात कर रहा है। सम्राट उनके ज्ञान पर मुग्ध होकर उन्हे यूनान ले चलने के लिए अर्थ और मान-प्रतिष्ठा का प्रलोभन दिखा रहा है, और ये संन्यासी उसकी प्रलोभन की बात सुनकर हँसी के साथ यूनान जाना अस्वीकार कर रहे है। तब सम्राट अपनी राजसत्ता के मद मे ललकारता है, 'यदि तुम न चलोगे, तो मै तुम्हे जान से मार डालूँगा।' और तब वे पुरुष खिलखिलाकर हँस पड़ते है और कहते है, 'तुमने आज तक ऐसी झूठी बात और कभी नही कही! मुझे भला कौन मार सकता है? मै तो अजन्मा और अविनाशी आत्मा हूँ।' यह है बल!

उपनिषद् शक्ति की खान हैं।

हमें दुर्बल करने के लिए हजारो विषय हैं, किस्से-कहानियाँ भी बहुत हैं। भाइयो! तुम्हारी और मेरी नसों मे एक ही रक्त का प्रवाह बह रहा है, तुम्हारा जीवन-मरण मेरा भी जीवन मरण है। इसी लिए तुमसे बारम्बार कहता हूँ कि हमको शक्ति, केवल शक्ति ही चाहिए। और उपनिषद् शक्ति की विशाल खान है। उनमें ऐसी प्रचुर शक्ति विद्यमान है कि वे समस्त

संसार को तेजस्वी कर सकते है। उनके द्वारा समस्त संसार पुनरुज्जीवित एवं शक्ति और वीर्यसम्पन्न हो सकता है। वे तो समस्त जातियों को, सकल मतों को, भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के दुर्बल, दुःखी और पददलित लोगों को उच्चस्वर से पुकारकर स्वयं अपने पैरो पर खड़े होने और मुक्त हो जाने के लिए कहते है। मुक्ति अथवा स्वाधीनता—दैहिक स्वाधीनता, मानसिक स्वाधीनता, आध्यात्मिक स्वाधीनता—यही उपनिषदों का मूलमन्त्र है।

साक्षात्कार ही धर्म है।

परन्तु शास्त्रों के द्वारा हम धार्मिक नही बन सकते। हम भले ही संसार की सारी पुस्तकें पढ़ डालें, पर हो सकता है, हम धर्म या ईश्वर का एक अक्षर भी न समझें। हम भले ही जीवन-भर तर्क-विचार करते रहे, पर स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव किए बिना हम सत्य का कण मात्र भी न समझेंगे। किसी मनुष्य को केवल कुछ पुस्तकें देकर ही अस्त्र-चिकित्सक नहीं बनाया जा सकता। तुम केवल एक नक्शा दिखाकर देश देखने का मेरा कौतूहल पूरा नही कर सकते। नक्शा केवल इतना कर सकता है कि वह देश के बारे में और भी अच्छी तरह से जानने की इच्छा उत्पन्न कर देगा। बस इसके अतिरिक्त उसका और कोई मूल्य नही। मन्दिर और गिरजाघर, पुस्तक और विधियाँ धर्म के केवल प्रारम्भिक अभ्यास कराने की सामग्रियाँ (Kindergarten) हैं—उनसे आध्यात्मिक क्षेत्र का जिज्ञासु अगली सीढ़ियों पर कदम रखने के लिए बल प्राप्त करता है। सिद्धान्तों, मतवादों या बौद्धिक विवादों में धर्म नही रखा है। हम आत्मा है यह जानकर तद्रूप बन जाना ही धर्म है, अपरोक्षानुभूति ही धर्म है।

हृदय को सुसंस्कृत बनाओ।

हम भले ही संसार के सबसे बड़े मनीषी हों, पर तो भी हो सकता है, हम ईश्वर के जरा भी समीप न पहुँचें। और हम देखते ही हैं कि सर्वोच्च बौद्धिक शिक्षा प्राप्त किए हुए लोगों में कई अधार्मिक पुरुष हुए है। पाश्चात्य सभ्यता की बुराइयो मे से यह भी एक है कि वहाँ हृदय की परवाह न करते हुए केवल बौद्धिक शिक्षा दी जाती है। ऐसी शिक्षा मनुष्य को दसगुना अधिक स्वार्थी बना देती है। जब हृदय और मस्तिष्क का द्वन्द्व उपस्थित हो, तब हृदय का ही अनुसरण करना चाहिए। हृदय ही हमे उस उच्चतम राज्य मे ले जाता है, जहाँ बुद्धि कभी पहुँच नही सकती। वह बुद्धि के भी परे वहाँ जा पहुँचता है, जिसे 'अन्तःप्रेरणा' कहते हैं। अतः सदा हृदय का ही संस्कार करो। हृदय मे से ईश्वर बोलता है।

धर्मान्धता एक रोग है।

मानव-जाति को जिस तीव्रतम प्रेम का अनुभव हुआ है, वह धर्म से ही प्राप्त हुआ है। धार्मिक क्षेत्र के पुरुषों से ही संसार के अत्यन्त उदार शान्ति-सन्देश प्राप्त हुए है। फिर, ससार मे घोरतम निन्दा-वाक्य भी धर्म में आस्था रखनेवालो द्वारा ही कहे गए है। प्रत्येक धर्म अपने सिद्धान्तो को सामने रखता है और इस पर जोर देता है कि केवल वे ही सत्य हैं। कोई-कोई तो अपने धर्ममतो को जबरदस्ती मनवाने के लिए तलवार तक खींच लेते है। यह बात नही कि दुष्टता के कारण ऐसा किया जाता हो, पर इसका कारण है मानव-मन की एक प्रकार की बीमारी, जिसे धर्मान्धता कहते हैं। तो भी, इन झगड़ों और झझटो, धर्मो और मतो की पारस्परिक घृणा और द्वेष के बावजूद भी, समय-समय पर शान्ति और समन्वय की घोषणा करनेवाली

शक्तिमयी आवाजें उठती रही हैं।

अब ऐसा अवसर आ गया था, जब ऐसे पुरुष जन्म लें, जो देखें कि सब सम्प्रदाय एक ही आत्मा, एक ही ईश्वर की शक्ति से चालित हो रहे हैं और प्रत्येक प्राणी में वही ईश्वर विद्यमान है; जिनका हृदय दरिद्र, निर्बल और पददलितों के लिए पानी-पानी हो जाय; और साथ ही जिनकी असाधारण तीव्र बुद्धि न केवल भारतवर्ष के, वरन् भारतेतर देशों के भी सारे विरोधी मत-मतान्तरों मे समन्वय स्थापित कर दे और इस प्रकार एक अद्भुत समन्वय और सार्वभौम धर्म का आविष्कार करे। ऐसे पुरुष का जन्म हुआ और मुझे उनके चरणो के समीप वर्षों तक बैठकर शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने अपने गुरुदेव से इस अद्भुत सत्य को सीखा कि संसार के भिन्न-भिन्न धर्म एक दूसरे से असंगत या विरोधी नही है। वे सब एक ही सनातन-धर्म के भिन्न-भिन्न रूप हैं। श्रीरामकृष्ण ने कभी किसी के विरुद्ध कोई कड़ी बात नही कही। उनमें ऐसी अपूर्व सहिष्णुता थी कि हर एक धर्मवाला यही समझता था कि ये उसी के धर्म के माननेवाले हैं। सब पर उनका प्रेम था; उनके लिए सभी धर्म सच्चे थे। उनका सारा जीवन मतवाद और साम्प्रदायिकता की संकुचित सीमा को तोड़ने में ही बीता।

समन्वयाचार्य श्रीरामकृष्ण।

अतः अपना मूलमन्त्र हो 'स्वीकार', न कि 'बहिष्कार'। केवल परधर्म-सहिष्णुता ही नही—क्योंकि वह अनेक समय नास्तिकता का नामान्तर मात्र है, इसलिए मैं उस पर विश्वास नही करता। मैं 'स्वीकार' में विश्वास करता हूँ। परधर्म-सहिष्णु कहने से मैं यह

सहिष्णुता नहीं, स्वीकृति।

समझता हूँ कि कोई धर्म अन्याय कर रहा है और मैं कृपापूर्वक उसे तरह दे रहा हूँ। तुम-जैसा या मुझ-जैसा कोई आदमी किसी को कृपापूर्वक तरह दे सकता है, यह समझना क्या भगवान के प्रति दोषारोपण करना नही है? मैं अतीत के समस्त धर्मों को स्वीकार करता हूँ और उनकी पूजा करता हूँ। मैं ईश्वर की पूजा सभी धर्मों के अनुसार करता हूँ, चाहे वे जिस रूप में उसकी पूजा करते हों। मैं मुसलमानों के मसजिद में चला जाऊँगा; ईसाइयो के साथ गिरजाघर में जाकर क्रास के सामने घुटने टेकूँगा; बौद्ध-विहार में प्रविष्ट होकर बुद्ध और उनके संघ की शरण लूँगा, और अरण्य में जाकर हिन्दुओं के पास बैठ, ध्यान में निमग्न हो उनकी भाँति सबके हृदय को उद्भासित करनेवाली ज्योति के दर्शन करने में सचेष्ट होऊँगा।

सतत तत्त्व-दर्शन ।

मैं केवल इतना ही नही करूँगा, बल्कि मैं अपना हृदय भविष्य मे आनेवाले सभी धर्मों के लिए खुला रखूँगा। क्या ईश्वर का ग्रन्थ समाप्त हो गया? अथवा अभी भी वह क्रमश प्रकाशित हो रहा है? ससार की ये आध्यात्मिक अनुभूतियाँ एक अद्भुत ग्रन्थ है। बाइबिल, वेद, कुरान और अन्य धार्मिक ग्रन्थसमूह मानो उसी ग्रन्थ के विभिन्न पृष्ठ हैं और उसके असंख्य पृष्ठ अभी भी अप्रकाशित हैं। अतीत में जो कुछ भी हुआ है, वह सब हम ग्रहण करेंगे; वर्तमान ज्ञान-ज्योति का उपभोग करेंगे, और भविष्य मे आनेवाली बातो को ग्रहण करने के लिए अपने हृदय के सारे दरवाजों को खुला रखेंगे। अतीत के ऋषियो को प्रणाम, वर्तमान के महापुरुषो को प्रणाम और जो-जो भविष्य में आयेंगे, उन सबको प्रणाम!

स्त्री-शिक्षा

प्राचीन भारत में स्त्री-शिक्षा।

यह समझना बड़ा कठिन है कि इस देश में स्त्रियों और पुरुषों के बीच इतना भेद क्यों रखा गया है, जबकि वेदान्त की यह घोषणा है कि सभी प्राणियों में वही एक आत्मा विराजमान है। स्मृतियाँ आदि लिखकर और स्त्रियों पर कड़े नियमों का बन्धन डालकर पुरुषों ने उन्हें केवल सन्तानोत्पादक यन्त्र बना रखा है। अवनति के युग में जबकि पुरोहितों ने अन्य जातियों को वेदाध्ययन के अयोग्य ठहराया, उसी समय उन्होंने स्त्रियों को भी अपने अधिकारों से वंचित कर दिया। पर वैदिक और औपनिषदिक युग में तो मैत्रेयी, गार्गी आदि पुण्यस्मृति महिलाओं ने ऋषियों का स्थान ले लिया था। सहस्र वेदज्ञ ब्राह्मणों की सभा में गार्गी ने याज्ञवल्क्य को ब्रह्म के विषय मे शास्त्रार्थ करने के लिए ललकारा था।

यथार्थ शक्ति-पूजा।

सभी उन्नत राष्ट्रों ने स्त्रियों को समुचित सम्मान देकर ही महानता प्राप्त की है। जो देश, जो राष्ट्र स्त्रियों का आदर नहीं करते, वे कभी बड़े नही हो पाए हैं और न भविष्य मे ही कभी बड़े होंगे। यथार्थ शक्ति-पूजक तो वह है, जो यह जानता है कि ईश्वर विश्व में सर्वव्यापी शक्ति है, और जो स्त्रियों में उस शक्ति का प्रकाश देखता है। अमेरिका में पुरुष अपनी महिलाओं को इसी दृष्टि से देखते हैं और उनके साथ उत्तम वर्ताव करते हैं, इसी कारण वे लोग सुसम्पन्न है, विद्वान् हैं, इतने स्वतंत्र और शक्तिशाली है। हमारे देश के इस पतन का मुख्य कारण यह है कि हमने शक्ति की इन

सजीव प्रतिमाओ के प्रति आदर-वुद्धि न रखी। मनु महाराज का कहना है—'जहाँ स्त्रियों का आदर होता है, वहाँ देवता प्रसन्न रहते है और जहाँ उनका आदर नही होता, वहाँ सारे कार्य और प्रयत्न निष्फल हो जाते हे।' * जहाँ ये स्त्रियाँ उदासीन और दु खी जीवन व्यतीत करती है, उस कुटुम्ब या देश की उन्नति की कोई आशा नही हो सकती।

शिक्षा ही उनकी समस्याओ को हल करेगी।

स्त्रियो की वहुतसी कठिन समस्याएँ है, पर उनमें एक भी ऐसी नही, जो उस जादू-भरे शब्द 'शिक्षा' के द्वारा हल न हो सके। हमारे मनु महाराज की क्या आज्ञा है? 'पुत्रियों का लालन-पालन और शिक्षा उतनी ही सावधानी और तत्परता से होनी चाहिए, जितनी पुत्रों की।' जैसे पुत्रों का विवाह तीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य-पालन के पश्चात् होना चाहिए, उसी प्रकार पुत्रियों को भी ब्रह्मचर्य-पालन करना चाहिए और उन्हें भी माता-पिता द्वारा शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए। पर हम लोग यथार्थ मे कर क्या रहे है? उन लोगो को सदैव नि.सहाय अवस्था में रहने और दूसरों पर गुलाम के समान अवलम्वित रहने की शिक्षा दी जाती है। इसी कारण किंचित् भी दु:ख या भय का अवसर आने पर वे आँखों से आँसू वहाने के सिवाय और किसी योग्य नही रहती। स्त्रियों को ऐसी अवस्था में रखना चाहिए कि वे अपनी समस्याओं को अपने ही तरीके से हल कर सके। हमारी भारतीय स्त्रियाँ इस कार्य में संसार की अन्य स्त्रियों के ही समान दक्ष है।

---

* यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया.॥

धर्म उसका केन्द्र है।

स्त्री-शिक्षा का विस्तार धर्म को केन्द्र बनाकर करना चाहिए। धर्म के अतिरिक्त दूसरी शिक्षाएँ गौण होंगी। धार्मिक शिक्षा, चरित्र-गठन, ब्रह्मचर्य-पालन—इन्ही की ओर ध्यान देना चाहिए। हमारी हिन्दू स्त्रियाँ सतीत्व का अर्थ आसानी से समझ लेती है, क्योकि यह उनका आनुवंशिक गुण है। सबसे पहले, उनमे यह आदर्श अन्य गुणों की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ किया जाय, जिससे उनका चरित्र सबल बने और वे अपने जीवन की प्रत्येक अवस्था में—चाहे विवाहित या अविवाहित (यदि वे अविवाहित रहना पसन्द करें तो)—पावित्र्य से रंच-भर भी डिगने की अपेक्षा बिना किसी हिचक के अपने प्राण तक दे देने को प्रस्तुत रहें।

आदर्श—सीता।

भारतवर्ष की स्त्रियों को सीता के पदचिह्नों का अनुसरण करके अपनी उन्नति करनी चाहिए। सीता का चरित्र अनुपम है। वह सच्ची भारतीय स्त्री की जीती-जागती प्रतिमा है, क्योकि पूर्ण-विकसित नारीत्व के समस्त भारतीय आदर्श सीता के ही चरित्र से उत्पन्न हुए हैं। यह महामहिमामयी सीता, स्वयं शुद्धता से भी शुद्ध, सहिष्णुता की परमोच्च आदर्श सीता, आर्यावर्त के इस विस्तृत भूमिखण्ड में सहस्रों वर्ष से आबालवृद्धवनिता की आराध्या बनी हुई है। जिसने अविचलित भाव से, मुख से एक आह तक निकाले बिना ऐसा महादुःखमय जीवन व्यतीत किया, वह नित्यसाध्वी, सदा शुद्धस्वभाव सीता, आदर्श पत्नी सीता, मनुष्यलोक यहाँ तक कि देवलोक की भी आदर्श-मूर्ति पुण्य-चरित्र सीता चिरकाल के लिए हमारी जातीय-देवी बनी रहेगी। वह हमारी जाति की नस-नस में समा गई है। हमारी नारियों को आधुनिकता के रंग में रँगने

की जो चेष्टाएँ हो रही है, यदि उन सव प्रयत्नो मे उनको सीता-चरित्र के आदर्श से भ्रष्ट करने की चेष्टा होगी, तो वे सव तुरन्त असफल हो जायँगी। और इसके उदाहरण हम प्रतिदिन देख ही रहे हैं।

त्याग की शिक्षा।

इस युग की वर्तमान आवश्यकताओ का अध्ययन करने पर यह आवश्यक दिखता है कि उनमे से कुछ को वैराग्य के आदर्श की शिक्षा दी जाय, जिससे वे युगान्तर से अपने रक्त में संजात ब्रह्मचर्यरूप सद्‌गुण की शक्ति द्वारा प्रज्वलित होकर आजीवन कुमारी-व्रत का पालन करें। हमारी जन्मभूमि को अपनी समुन्नति के लिए अपनी कुछ सन्तानों को विशुद्धात्मा ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी वनाने की आवश्यकता है। यदि स्त्रियो में से एक भी ब्रह्मज्ञानी हो गई, तो उसके व्यक्तित्व के तेज से सहस्रों स्त्रियाँ स्फूर्ति प्राप्त करेंगी और सत्य के प्रति जागृत हो जायँगी। इससे देश और समाज का वड़ा उपकार होगा।

लौकिक शिक्षा।

सुशिक्षिता और सच्चरित्रवती ब्रह्मचारिणियाँ शिक्षा-कार्य का भार अपने ऊपर ले। ग्रामों और शहरो में केन्द्र खोलकर स्त्री-शिक्षा के प्रसार का प्रयत्न करें। ऐसे सच्चरित्र, निष्ठावान उपदेशकों के द्वारा देश मे स्त्री-शिक्षा का यथार्थ प्रचार होगा। इतिहास और पुराण, गृह-व्यवस्था और कला-कौशल, गार्हस्थ्य-जीवन के कर्तव्य और चरित्र-गठन के सिद्धान्तों की शिक्षा देनी होगी। और दूसरे विषय, जैसे सीना-पिरोना, गृहकार्य-नियम, शिशु-पालन आदि भी सिखाए जायँगे। जप, पूजा और ध्यान शिक्षा के अनिवार्य अंग होंगे। दूसरे गुणो के साथ उन्हें शूरता और वीरता के भाव भी प्राप्त करने होंगे।

आधुनिक युग में उन्हें आत्म-रक्षा के भी उपाय सीख लेना आवश्यक हो गया है। झाँसी की रानी कैसी अपूर्व स्त्री थी! बस, इसी प्रकार हम भारतवर्ष के कार्य के लिए संघमित्रा, लीला, अहल्यावाई और मीरावाई के आदर्शों को चरितार्थ करनेवाली तथा अपनी पवित्रता, निर्भयता और ईश्वर के पादस्पर्श द्वारा प्राप्त शक्ति के कारण वीरमाता वनने योग्य महान् निर्भय स्त्रियों को सामने लायेंगे। हमें यह भी देखना होगा कि वे समय पर गृह की आदर्श माता बनें। जिन सद्गुणों के कारण हमारी ये माताएँ प्रसिद्ध हैं, उनकी सन्तानें इन सद्गुणों की और भी वृद्धि करेंगी। शिक्षित और धार्मिक माताओं के ही घर में महापुरुष जन्म लेते हैं।

आत्म-रक्षा।

यदि स्त्रियाँ उन्नत हो जायँ, तो उनके वालक अपने उदार कार्यों के द्वारा देश का नाम उज्ज्वल करेंगे। तब तो संस्कृति, ज्ञान, शक्ति और भक्ति देश में जागृत हो जायगी।

जनसमूह की शिक्षा

राष्ट्र के प्रति महान् पाप ।

भारतवर्ष के गरीबों और निम्नवर्ग के लोगों की दशा का स्मरण कर मेरा हृदय फटा जाता है। वे दिन-पर-दिन नीचे गिरते जा रहे हैं। निर्दय समाज के द्वारा अपने ऊपर होनेवाले आघातों का वे अनुभव तो करते हैं, पर वे जानते नही कि ये आघात कहाँ से आ रहे हैं। वे यह भूल गए हैं कि वे भी मनुष्य है। मेरा अन्त.करण इतना भरा हुआ है कि मैं अपने भावों को प्रकट नही कर सकता। जब तक करोड़ों मनुष्य भूख और अज्ञान में जीवन बिता रहे हैं, तब तक मैं उस प्रत्येक मनुष्य को देशद्रोही मानता हूँ, जो उनके व्यय से शिक्षित हुआ है और अब उनकी ओर तनिक भी ध्यान नही देता। हमारा महान् राष्ट्रीय पाप है जनसमुदाय की अवहेलना करना, और यही हमारे अध.पतन का कारण है। राजनीति चाहे जितनी अधिक मात्रा में रहे, पर उससे तब तक कोई लाभ न होगा, जब तक भारतवर्ष की जनता पुनः एक बार सुशिक्षित न हो जाय, जब तक उसे भर-पेट भोजन न मिले और हर प्रकार से उसकी सुख-सुविधा की ओर ध्यान न दिया जाय।

जनसमूह को शिक्षित बनाना ही एकमेव उपाय है।

देश उसी अनुपात में उन्नत हुआ करता है, जिस अनुपात में वहाँ के जनसमूह में शिक्षा और बुद्धि का प्रसार होता है। भारतवर्ष की पतनावस्था का मुख्य कारण यह रहा कि मुट्ठी-भर लोगो ने देश की सम्पूर्ण शिक्षा और बुद्धि पर एकाधिपत्य कर लिया। यदि हम पुनः उन्नत होना चाहते हैं, तो हम जनसमूह में शिक्षा का प्रसार करके ही वैसा

हो सकते हैं। निम्नवर्ग के लोगों को अपने खोए हुए व्यक्तित्व का विकास करने के लिए शिक्षा देना ही उनकी एकमात्र सेवा करना है। उनके सामने विचारों को रखो। संसार में उनके चारों ओर क्या चला है इसकी ओर उनकी आँखें खोल दो, और तव वे अपनी मुक्ति का कार्य स्वयं कर लेंगे। प्रत्येक राष्ट्र, प्रत्येक स्त्री और पुरुप को अपनी मुक्ति का कार्य स्वयं करना होगा। उनके सामने विचारों को रख दो—वस उन्हें इतनी ही सहायता चाहिए, और शेप सव उसके परिणामस्वरूप आ ही जायगा। हमारा काम है भिन्न-भिन्न रासायनिक द्रव्यों को एक साथ रख देना, और रवे वनाने का कार्य (crystallisation) प्रकृति के नियम के द्वारा ही सम्पन्न हो जायगा।

मेरा विचार है, हमारे शास्त्र-ग्रन्थों में आध्यात्मिकता के जो रत्न मौजूद हैं और जो कुछ ही मनुष्यों के अधिकार में मठों और अरण्यों में छिपे हुए है, सवसे पहले उन्हें निकालना होगा। जिन लोगों के अधिकार में ये छिपे हुए हैं, केवल वहीं से इस ज्ञान का उद्धार करने से काम न होगा, किन्तु उससे भी दुर्भेद्य पेटिका अर्थात् जिस भापा में ये सुरक्षित है, उस शताब्दियों के संस्कृत शब्दों के जाल से उन्हें निकालना होगा। तात्पर्य यह है कि मै उन्हें सवके लिए सुलभ कर देना चाहता हूँ। मैं इन तत्त्वों को निकालकर सवकी—भारत के प्रत्येक मनुष्य की—सार्वजनिक सम्पत्ति वना देना चाहता हूँ, चाहे वह संस्कृत जानता हो या नही। इस मार्ग की वहुत वड़ी कठिनाई हमारी यह गौरवमयी संस्कृत भापा है, और वह तव तक दूर नही हो सकती, जव तक हमारे देश के सभी मनुष्य—यदि सम्भव हो

आध्यात्मिक सत्यों को उनकी पहुँच के भीतर ला दो।

तो—संस्कृत के अच्छे विद्वान् नही हो जाते। यह कठिनाई तुम्हारी समझ में आ जायगी, जब मैं कहूँगा कि आजीवन इस संस्कृत भाषा का अध्ययन करने पर भी जब मैं इसकी कोई नई पुस्तक उठाता हूँ, वह मुझे बिलकुल नई जान पड़ती है। अब सोचो कि जिन लोगों ने कभी विशेष रूप से इस भाषा का अध्ययन करने का समय नही पाया, उनके लिए यह कितनी अधिक क्लिष्ट होगी! अतएव लोगो की बोल-चाल की भाषा में उन विचारों की शिक्षा देनी होगी। जनसाधारण को उनकी निजी भाषा मे शिक्षा दो। उनके सामने विचारों को रखो; वे जानकारी प्राप्त कर लेंगे—पर और भी कुछ आवश्यक होगा। उन्हे संस्कृति दो। जब तक तुम उन्हें संस्कृति न दोगे, तब तक उनकी उन्नत दशा कोई स्थायी रूप प्राप्त नही कर सकती।

मातृभाषा द्वारा शिक्षा दो।

इसके साथ-ही-साथ संस्कृत-शिक्षा भी चलनी चाहिए, क्योकि संस्कृत शब्दों की ध्वनि मात्र से हमारी जाति को प्रतिष्ठा, बल और शक्ति प्राप्त होती है। भगवान बुद्ध ने भी यह भूल की कि उन्होंने जनता में संस्कृत-शिक्षा का विस्तार बन्द कर दिया। वे शीघ्र और तात्कालिक परिणाम चाहते थे। इसी लिए उन दिनों की 'पाली' भाषा में उन्होंने संस्कृत भाषा मे निबद्ध भावों का भाषान्तर करके उनका प्रचार किया। यह बहुत ही सुन्दर हुआ था। वे जनता की भाषा में बोले और जनता ने उनकी बात को समझ लिया। इससे उनके भाव बहुत शीघ्र फैले और बहुत दूर-दूर तक पहुँचे। पर इसके साथ ही संस्कृत का भी प्रचार होना चाहिए था। ज्ञान तो प्राप्त हुआ, पर उसमें प्रतिष्ठा नही थी। और जब तक

संस्कृत-शिक्षा।

तुम उसे प्रतिष्ठा नही देते, एक और जाति पैदा हो जायगी, जो संस्कृत भाषा जानने के कारण शीघ्र ही औरों की अपेक्षा ऊँची उठ जायगी।

झोपड़ियों में राष्ट्र।

स्मरण रहे, हमारा राष्ट्र झोपड़ियो में बसता है। वर्तमान समय में तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम देश के एक भाग से दूसरे में जाओ, और गाँव-गाँव जाकर लोगों को समझाओ कि अब आलस्य के साथ केवल बैठे रहने से काम नही चलेगा। उन्हे उनकी यथार्थ अवस्था का परिचय कराओ और कहो, "भाइयो! सब कोई उठो! जागो! अब और कितना सोओगे!" जाओ और उन्हें अपनी अवस्था सुधारने की सलाह दो, और शास्त्रों की बातों को विशद रूप से सरलता-पूर्वक समझाते हुए उदात्त सत्यों का ज्ञान कराओ। उनके मन में यह बात जमा दो कि ब्राह्मणो के समान उनका भी धर्म पर वही अधिकार है। सभी को, चाण्डाल तक को भी, इन्ही जाज्वल्यमान मन्त्रों का उपदेश दो। उन्हें सरल शब्दों में जीवन के लिए आवश्यक विषयों तथा वाणिज्य-व्यापार और कृषि आदि की भी शिक्षा दो।

जीवन के हर विभाग को आध्यात्मिक बना दो।

सदियों से ऊँची जातिवालों, राजाओं और विदेशियों के असह्य अत्याचारों ने उनकी सारी शक्तियों को नष्ट कर दिया है। और अब शक्ति प्राप्त करने का पहला उपाय है उपनिषदों का आश्रय लेना और यह विश्वास करना कि 'मैं आत्मा हूँ,' 'मुझे तलवार काट नही सकती; शस्त्र छेद नहीं सकता; अग्नि जला नही सकती; वायु सुखा नहीं सकती; मैं सर्वशक्तिमान हूँ; मैं सर्वदर्शी हूँ।' वेदान्त के इन सब महान् तत्त्वों को

अब जंगलों और गुफाओं से बाहर आना होगा और न्यायालयों, प्रार्थना-मन्दिरों एवं गरीबों के झोपड़ों में प्रवेश कर अपना कार्य करना होगा। अब तो मछली पकड़ते हुए मछुओ और विद्याभ्यास करते हुए विद्यार्थियो के साथ इन तत्त्वो को कार्य करना होगा। ये सन्देश प्रत्येक स्त्री, पुरुष और बालक के लिए है, वह चाहे जो पेशा करता हो, चाहे जहाँ रहता हो। अच्छा, ये सब मछुए आदि उपनिषदों के सिद्धान्तो के अनुसार कार्य कैसे कर सकते है? मार्ग भी बता दिया गया है। यदि मछुआ सोचे कि मैं आत्मा हूँ, तो वह एक उत्तम मछुआ होगा। यदि विद्यार्थी यह चिन्तन करने लगे कि मैं आत्मा हूँ, तो वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी होगा।

शिक्षा का घर-घर प्रचार होना चाहिए।

एक बात जो भारतवर्ष मे सभी बुराइयों की जड़ मे है, वह है गरीबों की अवस्था। मान लो, तुमने प्रत्येक गाँव में एक निःशुल्क पाठशाला खोल दी, पर तो भी उससे कोई लाभ न होगा, क्योकि गरीब लड़के पाठशाला में आने की अपेक्षा अपने पिता की सहायता करने खेतो मे जाना या जीविका के लिए और कोई धन्धा करना अधिक पसन्द करेगे। अच्छा, यदि पहाड़ मुहम्मद के पास नहीं आता, तो मुहम्मद ही पहाड़ के पास क्यों न जाय! यदि गरीब बालक शिक्षा लेने नही आ सकता, तो शिक्षा को ही उसके पास पहुँचना चाहिए। हमारे देश मे सहस्रों निष्ठावान, स्वार्थ-त्यागी संन्यासी हैं, जो एक ग्राम से दूसरे ग्राम में धर्मोपदेश करते फिरते हैं। यदि उनमें से कुछ को भौतिक विषयों के भी शिक्षक के रूप मे संगठित किया जा सके, तो वे एक स्थान से दूसरे स्थान को, एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे को, न केवल धर्मोपदेश करते हुए वरन् शिक्षा-कार्य भी करते हुए

जायँगे। मान लो, इनमें से दो मनुष्य सन्ध्या समय किसी गाँव में अपने साथ मैज़िक लैन्टर्न, दुनिया का गोला और कुछ नक्शे आदि लेकर गए, तो वे अनजान मनुष्यों को वहुतसा ज्योतिष और भूगोल सिखा सकते है। भिन्न-भिन्न देशों की कहानियाँ वताकर वे गरीवों को जन्म-भर में पुस्तकों के द्वारा जो जानकारी प्राप्त होती, उससे कही सौगुना अविक कानों के द्वारा सिखा सकते हैं। आवुनिक विज्ञान की सहायता से उनके ज्ञान को प्रज्वलित कर दो। उन्हें इतिहास, भूगोल, विज्ञान और साहित्य पढ़ाओ और इन्ही के साथ-साथ एवं इन्ही के द्वारा धर्म के गम्भीर सत्यों की भी शिक्षा दो।

जीवन-संग्राम मे वुरी तरह जूझे रहने के कारण उन्हे ज्ञान की जागृति का अवसर नही मिला है। वे अव तक यंत्रवत् काम करते रहे हैं और चतुर शिक्षित लोग उनके परिश्रम के फल के उत्तमांग का उपभोग स्वयं करते रहे हैं। पर अव समय वदल गया है। निम्न-वर्गवाले इस विषय में जागृत हो रहे हैं और इसका एक साथ मिलकर विरोध कर रहे हैं। उच्च-वर्गवाले अव उन्हें दवाकर नहीं रख सकते, चाहे वे जितना प्रयत्न करें। उच्च-वर्गवालों की भलाई अव इसी में है कि वे निम्न-वर्गवालो को उनके समुचित हक की प्राप्ति में सहायता दें। इसी लिए मैं कहता हूँ कि जनसमूह में शिक्षा का प्रसार करने के कार्य में लग जाओ। उन्हें वता दो और समझा दो, 'तुम हमारे भाई हो, हमारे ही शरीर के अंग हो।' यदि वे तुमसे इतनी सहानुभूति पा जायँ, तो उनका कार्य करने का उत्साह सौगुना वढ़ जायगा।

वड़े काम करने के लिए तीन वातों की आवश्यकता होती है। पहला है हृदय—अनुभव की शक्ति। वुद्धि या विचार-शक्ति

में क्या धरा है? वह तो कुछ दूर जाती है और बस वही रुक जाती है। पर हृदय?—हृदय तो महाशक्ति का द्वार है; अन्त.स्फूर्ति वही से आती है। प्रेम असम्भव को भी सम्भव कर देता है। यह प्रेम ही जगत् के सब रहस्यो का द्वार है। अतएव, ऐ मेरे भावी सुधारको, मेरे भावी देशभक्तो, तुम हृदयवान बनो। क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि देव और ऋषियो की करोड़ों सन्ताने आज पशुतुल्य हो गई है? क्या तुम हृदय से अनुभव करते हो कि लाखो आदमी आज भूखो मर रहे है, और लाखों लोग शताब्दियों से इसी भाँति भूखो मरते आए है? क्या तुम अनुभव करते हो कि अज्ञान के काले बादल ने सारे भारत को ढक लिया है? क्या तुम यह सब सोचकर द्रवित हो जाते हो? क्या इस भावना ने तुम्हारी नींद को गायब कर दिया है? क्या यह भावना तुम्हारे रक्त के साथ मिलकर तुम्हारी धमनियो मे बहती है? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से मिल गई है? क्या उसने तुम्हे पागल-सा बना दिया है? क्या देश की दुर्दशा की चिन्ता ही तुम्हारे ध्यान का एकमात्र विषय बन बैठी है? और क्या इस चिन्ता में विभोर हो तुम अपने नाम-यश, स्त्री-पुत्र, धन-सम्पत्ति, यहाँ तक कि अपने शरीर की भी सुध विसर गए हो? क्या सचमुच तुम ऐसे हो गए हो? बस, यही पहला कदम है।

महान् सफलता के लिए अनुभव करना आवश्यक है।

अच्छा, माना कि तुम अनुभव करते हो, पर पूछता हूँ, क्या केवल व्यर्थ की बातो मे शक्तिक्षय न करके इस दुर्दशा का निवारण करने के लिए तुमने कोई यथार्थ कर्तव्य-पथ निश्चित किया है? क्या स्वदेश-

उपाय।

वासियों को उनकी इस जीवन्मृत अवस्था से बाहर निकालने के लिए कोई मार्ग ठीक किया है? किन्तु इतने ही से पूरा न पड़ेगा। क्या तुम पर्वतकाय विघ्न-बाधाओं को लाँघकर कार्य करने के लिए तैयार हो? यदि सारी दुनिया हाथ में नंगी तलवार लेकर तुम्हारे विरोध में खड़ी हो जाय, तो भी क्या तुम जिसे सत्य समझते हो, उसे पूरा करने का साहस करोगे? यदि तुम्हारे स्त्री-पुत्र तुम्हारे प्रतिकूल हो जायँ, भाग्य-लक्ष्मी तुमसे रूठकर चली जाय, नाम-कीर्ति भी तुम्हारा साथ छोड़ दे, तो भी

दृढ़ लगन।

क्या तुम उस सत्य में लगे रहोगे? फिर भी क्या तुम उसके पीछे लगे रहकर अपने लक्ष्य की ओर सतत बढ़ते रहोगे? जैसा कि राजा भर्तृहरि ने कहा है, "चाहे नीतिनिपुण लोग निन्दा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी आए या जहाँ उसकी इच्छा हो चली जाय, मृत्यु आज हो या सौ वर्ष बाद, धीर पुरुष तो वह है, जो न्याय के पथ से तनिक भी विचलित नहीं होता।" * क्या तुममें ऐसी दृढ़ता है? यदि तुममें ये तीन बातें हैं, तो तुममें से प्रत्येक अद्भुत कार्य कर सकता है।

कर्म ही पूजा है।

आओ, हम प्रार्थना करें—"तमसो मा ज्योतिर्गमय"—"कृपामयी ज्योति, रास्ता दिखाओ!" और अन्धकार में से एक किरण दिखाई देगी, पथ-प्रदर्शक कोई हाथ आगे बढ़ आयगा। आओ, हममें से प्रत्येक, दिन और रात उन करोड़ों पददलित भारतीयों के लिए प्रार्थना करे,

---

* निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

जो गरीबी, पुरोहितों के छल और नाना अत्याचारों द्वारा जकड़े हुए हैं। उन्हीं के लिए दिन-रात प्रार्थना करो। मैं उच्च और धनिकों की अपेक्षा उनको उपदेश देने की अधिक चिन्ता करता हूँ। मैं दार्शनिक नही हूँ, तत्त्ववेत्ता नही हूँ और कोई सन्त भी नहीं हूँ। परन्तु मैं दरिद्र हूँ और दरिद्रों को प्यार करता हूँ। दरिद्रता और अज्ञान के गर्त में सदा से डूबे हुए इन बीस करोड़ नर-नारियों के दु:खों को कौन अनुभव करता है? जो इनके दु:खों का अनुभव करता है, उसी को मैं महात्मा कहूँगा। किसके हृदय में उनके दु:खों के लिए टीस होती है? उन्हे न कही प्रकाश मिलता है, न शिक्षा। उन्हें प्रकाश कौन देगा—कौन उनको शिक्षा देने के लिए उनके द्वार-द्वार भटकेगा? इन्हीं लोगों को तुम अपना ईश्वर समझो—निरन्तर इनका ध्यान करो, उनके लिए काम करो, उनके लिए निरन्तर प्रार्थना करो—ईश्वर तुम्हें मार्ग दिखायगा।

———

हमारे अन्य प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर – १, म. प्र.